हिन्दी अंक 21 : अगस्त, 2019
चौ-मासिक, बेंगलूरु

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी

लर्निंग कर्व

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

कक्षा के बाहर सीखना

सम्पादन समिति

प्रेमा रघुनाथ, मुख्य सम्पादक
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
पी.ई.एस.कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग कैम्पस,
इलेक्ट्रॉनिक सिटी,बेंगलूरु
prema.raghunath@azimpremjifoundation.org

चन्द्रिका मुरलीधर
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
पी.ई.एस.कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग कैम्पस,
इलेक्ट्रॉनिक सिटी,बेंगलूरु
chandrika@azimpremjifoundation.org

मधुमिता सुधाकर
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
पी.ई.एस.कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग कैम्पस,
इलेक्ट्रॉनिक सिटी,बेंगलूरु
madhumita@azimpremjifoundation.org

निमरत खण्डपुर
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
पी.ई.एस.कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग कैम्पस,
इलेक्ट्रॉनिक सिटी,बेंगलूरु
nimrat.kaur@azimpremjifoundation.org

सम्पादकीय कार्यालय
सम्पादक, अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
पी.ई.एस.कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग कैम्पस,
इलेक्ट्रॉनिक सिटी,बेंगलूरु बेंगलूरु, कर्नाटक - 560 100
Phone : 080-66145136 / 5272
Fax : 080-66145230
Email: publications@apu.edu.in
Website: www.azimpremjiuniversity.edu.in

शोभा लोकनाथन कवूरी
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
पी.ई.एस.कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग कैम्पस,
इलेक्ट्रॉनिक सिटी,बेंगलूरु
shobh.kavoori@azimpremjifoundation.org

सलाहकार
हृदय कान्त दीवान, सचिन मुले
एस. गिरिधर, उमाशंकर पेरिओडी

हिन्दी अनुवाद
बलराम बोधि

कॉपी एडिटर (हिन्दी)
स्वाति भदौरिया

हिन्दी अंक सम्पादन
राजेश उत्साही

आवरण चित्र सौजन्य
अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी

डिज़ाइन
Banyan Tree
98458 64765

हिन्दी अंक लेआउट
आदर्श प्रा.लि. भोपाल
+91-755-2555442

कृपया ध्यान दें :
इस अंक में प्रकाशित लेख मूलत: अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व (अँग्रेज़ी) अंक 4, अगस्त, 2019 के लेखों के हिन्दी अनुवाद हैं। यह अनुवाद मई, 2024 में ई-कॉपी के रूप में तैयार एवं ऑनलाइन प्रकाशित हुआ है। लेखों में व्यक्त विचार और दृष्टिकोण लेखकों के अपने हैं, उनसे अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

'' अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का एक प्रकाशन है। इसका उद्देश्य शिक्षकों, शिक्षक-अध्यापकों, स्कूल प्रमुख, शिक्षा अधिकारियों, अभिभावकों और गैर-सरकारी संगठनों तक ऐसे प्रासंगिक और विषयगत मुद्दों में पहुँच बनाना है जो उनके रोजमर्रा के काम से सम्बन्धित हैं। लर्निंग कर्व शैक्षिक जगत के विभिन्न दृष्टिकोणों, अभिव्यक्तियों, परिप्रेक्ष्यों, नई जानकारियों और नवाचार की कहानियाँ प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करता है। इसका मूल विचार 'शैक्षणिक' और 'अभ्यासकर्ता' के मध्य सन्तुलन हेतु उन्मुख पत्रिका के रूप में स्थापित होना है।''

सम्पादक की ओर से

यह कहना कि सीखना तो कहीं भी और कभी भी हो सकता है, ऐसे पलों में और ऐसी-ऐसी जगहों पर जहाँ आपने कल्पना भी नहीं की होती, निश्चित ही एक घिसी-पिटी बात है। सीखना जीवन भर जारी रहता है। अगर हम सक्रिय और सतर्क बने रहना चाहते हैं, अपनी प्रासंगिकता को बनाए रखना चाहते हैं तो ऐसा होना भी चाहिए। अगर यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, तो फिर 'सीखने' के लिए हमें कक्षा की ज़रूरत ही नहीं पड़नी चाहिए। यह तो हर समय, हमारे चारों तरफ़ चल ही रही है। कोई यह दावा भी कर सकता है कि सीखना तो जीवन का ही दूसरा नाम है। लेकिन इसके बावजूद भी हम यह मानते हैं कि सीखने के लिए स्कूल एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है; जहाँ हम औपचारिक और व्यवस्थित तरीक़े से चीज़ों को सीखते हैं, एक-एक क़दम करके, एक स्तर से दूसरे की तरफ़ बढ़ते हुए, ताकि अन्ततः हम उन परीक्षाओं का आसानी के साथ सामना कर सकें जो अपने भविष्य के चुनाव में हमारी मदद करती हैं।

लेकिन जब यह सारा कुछ चल रहा होता है, तो उसके साथ–ही-साथ हम और भी बहुत कुछ अपरिभाषित और रोचक सीख रहे होते हैं। किसी से आकस्मिक भेंट, संयोगवश की गई कोई टिप्पणी जो हमारी सोच को एक नई दिशा में मोड़ दे, शिक्षकों के बीच घिरे हुए, या प्रयोगशालाओं में घटित होता वह 'आहा' क्षण जब कितनी ही अकथनीय चीज़ें जिनकी कोई व्याख्या नज़र नहीं आती थी अचानक से समझ में आ जाएँ और हमारे सारे दृष्टिकोण को बदलकर रख दें। एक अन्य तरह का सीखना, जो कि बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, खेलों के दौरान भी होता है, यह किसी तरह का कोई संगठित/पेशेवर खेल भी हो सकता है या फिर यूँ ही छुट्टी के दिन पड़ोसियों के साथ खेला जाने वाला कोई मैच भी। खेलना अपने आप में ही सीखने का एक बहुत ज़बरदस्त मैदान है। फ़ुटबाल, कबड्डी या फिर खो-खो खेलते हुए हम बहुत कुछ सीखते हैं : मसलन खेल-भावना, निष्पक्ष खेल और एकजुट होकर टीम के रूप में आगे बढ़ना।

स्कूल में होने वाली प्रातःकालीन सभा भी ऐसी ही एक और मिसाल है। दिन भर के लिए अपनी-अपनी कक्षाओं में जाने से पहले सबका एक जगह मिलना याद दिलाता है कि सब एक ही बड़े समूह का हिस्सा हैं, साथ ही यहाँ हमें नेतृत्व करने और सार्वजनिक तौर पर बोलने के मौक़े मिलते हैं। इसमें की जाने वाली घोषणाएँ और भाषण, सुनने की कला को निखारने में भी मदद करते हैं। इसी तरह प्रयोगशालाएँ सीखने का सिर्फ़ एक औपचारिक स्थान भर ही नहीं हैं, बल्कि उनकी भूमिका इससे कहीं ज़्यादा है। सोचने के नए-नए तरीक़े, निराधार मान्यताओं से छुटकारा, अंधविश्वासों की जगह तथ्यों को रखना – इसके अलावा भी वहाँ और बहुत कुछ है जिस पर हम ग़ौर कर सकते हैं और जीवन में ढाल सकते हैं। किताबें (ज्ञान का भण्डार हैं, वे मनोरंजन भी करती हैं, उन पर चर्चा भी हो सकती है) और पढ़ना सीखने के दो प्रेरक स्रोत हैं। पुस्तकालय और कक्षा में किताबों का कोना, हमें चर्चा और सोच-विचार का मौक़ा देते हैं और मौन होकर बैठना सिखाते हैं जो कि सीखी गई बातों को आत्मसात करने के लिए बेहद ज़रूरी है। बेशक कई जगहों पर आधुनिक तकनीकी के चलते किताबों की जगह आसानी से हाथ में आ जाने वाले उपकरणों ने ले ली है। इन्हें इधर-उधर ले जाना और रखना आसान है, जो पढ़ने को अधिक आसान बना देते हैं, ख़ासकर शहरी इलाकों में। लेकिन क्या यह उपकरण किताबों-सा जादुई एहसास जगा पाएँगे यह बहस का विषय है।

सीखने के इन सारे स्रोतों के चारों तरफ़ हमारा भौतिक वातावरण है जिसकी हम चाहे जितनी अवहेलना करें, बर्बाद करें लेकिन

फिर भी हमारे थोड़े से ध्यान और देख-रेख से ही वह फिर से जी उठने के लिए हमेशा तैयार रहता है। छोटी-छोटी लेकिन बहुत ही महत्त्वपूर्ण बातों से, प्रकृति और प्राकृतिक माहौल का सम्मान करना सीखना एक ऐसा सबक़ है, जिसे नज़रन्दाज़ करने का मतलब है ख़ुद को ही ख़तरे में डालना।

इन सारी बातों के अलावा और भी बहुत कुछ है जिसे आप इस अंक में देख सकते हैं। अपने अनुभवों के आधार पर वातावरण के बारे में सीखना, पढ़ने की आदत कैसे ज्ञान की सीमाओं को फैलाती है और साथ-ही-साथ भाषायी कुशलता में भी निखार लाती है, और सुबह की सभा कैसे सीखने के अवसरों का एक भण्डार है, यह सारी बातें इस अंक में हैं। कुछ अन्य लेखों में विस्तार से चर्चा की गई है, कि विज्ञान कैसे अन्धविश्वासों को मिटाता है और जिज्ञासा तथा जाँच-पड़ताल की भावना को बढ़ावा देता है। एक लेख है जो यह बताता है कि खेलों से हमें सिर्फ़ खेल-नियमों का ही पता नहीं चलता, बल्कि उनके जरिए हम मूल्यों को आत्मसात करना, लैंगिक समानता और समावेशन को भी अपने भीतर उतारते हैं। अधिगम या सीखने के भीतर ही सीखने से जुड़े तमाम आयाम या दृष्टिकोण हैं लेकिन विरोधाभास यह है कि वह सब सीखने के दायरे से बाहर है।

हमेशा की तरह, हम राजेश उत्साही और उनकी पूरी टीम को इन लेखों के हिन्दी अनुवाद के लिए धन्यवाद देते हैं।

पाठकों के फ़ीडबैक,विचारों और सुधार के लिए उनके सुझावों का हम स्वागत करते हैं। कृपया अपने पत्र नीचे दी गई आईडी पर भेजेंI

प्रेमा रघुनाथ
प्रधान सम्पादक
prema.raghunath@azimpremjifoundation.org

अनुवाद : बलराम बोधि

इस अंक में

शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य 03
अदिति मुतातकर और आकाश लुगुन

दीवार पत्रिका : कक्षा-कक्ष से बाहर सीखने-सिखाने की नायाब खिड़की 07
अनिल सिंह

विज्ञान एवं अन्धविश्वास 10
आशीष शर्मा

पुस्तकालय : प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा का महत्त्वपूर्ण केन्द्रबिन्दु 15
दिनेश पटेल

कक्षा के बाहर सीखना : असल जीवन के अनुभव 19
जिनेविव तलंग

बाल-मेला 22
कुमार अमलेन्दु

सुबह की सभा : सीखने का मंच 25
मनोज कुमार त्रिपाठी और शिव कुमार

पुस्तकें : झरोखा दुनिया का 30
मनोज निगम

इतिहास, कक्षा की चारदीवारी के बाहर : एक विद्यार्थी के अनुभव 34
नन्दन संक्रान्ति कौशिक

मिडिल स्कूल शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र 36
निदेश सोनी

शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र : मेरे अनुभव 39
नीलेश मालवीय

बच्चों के खेल : हिमालय के एक गाँव की यादें 43
निमरत खण्डपुर

गर्मियों की छुट्टियाँ : सीखने का एक अनौपचारिक अनुभव 46
प्रकाश चन्द्र गौतम

इस अंक में

टी-लैब : ख़ुशियों का आँगन 48
प्रमोद मैथिल

प्रकृति एक शिक्षक 53
प्रीति राव

भिन्नता को स्वीकार करना सीखना 57
शेफ़ाली त्रिपाठी मेहता

कक्षा में पुस्तकों का कोना 60
शहनाज़ डीके

कक्षा के बाहर : सीखने के अवसर 62
सौरभ सोम और अर्चना द्विवेदी

चार दीवारियों से परे : प्रोजेक्ट आधारित शिक्षा की एक मिसाल 66
शुभ्रा मिश्रा, दिनेश बर्तवाल, नरेन्द्र कोटियाल, वीरेन्द्र नेगी

शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य

अदिति मुतातकर और आकाश लुगुन

स्कूलों में शारीरिक शिक्षा हमेशा से एक पेचीदा विषय रहा है। हालाँकि इसे ज़्यादातर सीनियर सैकंडरी स्कूलों के पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है और उनमें शारीरिक शिक्षा के लिए एक शिक्षक भी रहता है। लेकिन आमतौर पर उसका काम बालों की लम्बाई और नाखूनों की जाँच करना या विद्यार्थियों को निजी साफ़-सफ़ाई और अनुशासन के मापदण्ड पर ख़रा न उतरने पर सज़ा देने तक ही रहता है। राष्ट्रीय समारोहों के दिनों में वे सबसे आगे रहते हैं। दूसरे विषयों के विपरीत शारीरिक शिक्षा में किसी तरह का कोई मूल्यांकन नहीं होता। स्कूल के सीखने-सिखाने के उद्यम में शारीरिक शिक्षा के योगदान को स्वीकार करना अक्सर मुश्किल होता है।

एक संगठन के रूप में, *'आर्ट ऑफ़ प्ले'* में हमारा उद्देश्य स्कूल के सीखने-सिखाने के उद्यम में शारीरिक शिक्षा की भूमिका को बढ़ाना है। शिक्षकों, शिक्षक–प्रशिक्षकों, शैक्षिक प्रशासकों और पाठ्यक्रम बनाने वाली संस्थाओं में शारीरिक शिक्षा की अधिगम प्रक्रिया की समझ विकसित करने के उद्देश्य से हम दिल्ली और हरियाणा के आठ सरकारी विद्यालयों में शारीरिक शिक्षा पर गहन काम कर रहे हैं। इस लेख में हम शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों को प्राप्त करने में शारीरिक शिक्षा के योगदान के बारे में चर्चा करेंगे।

सरकारी स्कूलों में शारीरिक शिक्षा की मौजूदा स्थिति

युवा कार्यक्रम और खेल मंत्रालय की 2015 की रिपोर्ट के मुताबिक़ भारत के 93.7 % नौजवानों की संगठित खेलों तक कोई पहुँच नहीं है। हालाँकि एनसीएफ़ 2005 शारीरिक शिक्षा को पाठ्यक्रम का एक ज़रूरी हिस्सा बनाने की सिफ़ारिश करता है और भारत के सभी शैक्षिक बोर्डों ने इसे एक अनिवार्य विषय भी बनाया है, लेकिन फिर भी इस विषय और इसे पढ़ाने वाले शिक्षक, दोनों को ही वैसा सम्मान और महत्त्व नहीं मिल पाया है जैसा, मिसाल के लिए, गणित या विज्ञान विषय और उसे पढ़ाने वाले शिक्षकों को मिलता है।

सरकारी स्कूलों के पदानुक्रम में शारीरिक शिक्षा का दर्जा

शारीरिक शिक्षा के बारे में दूसरे विषयों के ज़्यादातर शिक्षकों का नज़रिया काफ़ी संकुचित होता है। शारीरिक शिक्षा के शिक्षक अक्सर ही स्कूल की समय-सारिणी में अपनी मर्ज़ी का समय हासिल नहीं कर पाते। अध्यापकों और प्रबन्धकों के साथ बातचीत के दौरान हमने यह पाया कि शारीरिक शिक्षा अक्सर ही स्पष्ट उद्देश्यों की कमी से जूझती हुई नज़र आती है।

शारीरिक शिक्षा का फलसफ़ा बहुत हद तक व्यक्तिनिष्ठ है और काफ़ी अर्से से शिक्षाशास्त्रियों में बहस का मुद्दा रहा है, जहाँ तक *'आर्ट ऑफ़ प्ले'* का सवाल है, हमारा मानना है कि शारीरिक शिक्षा अपने शरीर के बारे में जागरूकता के विचार के गिर्द घूमती है। शरीर, मन और सहज-प्रवृतियों के आपसी सम्बन्ध ही हमारे पाठ्यक्रम के केन्द्रबिन्दु हैं, जहाँ यह गुंजाइश रखने की ज़रूरत है कि हर विद्यार्थी को अपनी ही गति से सीखने का मौक़ा मिल सके और यही स्वाभाविक रूप से शारीरिक शिक्षा को अभिव्यक्ति का एक माध्यम बनाता है।

वहीं दूसरी तरफ़ रूढ़िवादी नज़रिया परम्परागत मूल्यों जैसे गर्व, मज़बूत इरादों, साहस और शारीरिक गुणों को बढ़ावा देने को ही शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य मानता है। कुछ सरकारी स्कूलों में शिक्षाशास्त्री और शिक्षक ख़ुद को अक्सर ही इन विचारों के बीच कहीं फँसा हुआ पाते हैं। हालाँकि सैद्धान्तिक तौर पर वे यह मानते हैं कि शारीरिक शिक्षा सभी विद्यार्थियों के लिए ज़रूरी है, लेकिन व्यवहार में वे खेलों में उत्कृष्टता हासिल करने पर ही ज़ोर देते हैं। इसी वजह से हम अक्सर इन मामलों में नाकाम ही रहते हैं।

कक्षागत पाठ्यक्रम

अम्बाला, फ़रीदाबाद और दिल्ली के स्कूलों में काम करते हुए हमने ऐसी कुछ समान बातें देखीं जो स्कूलों में इस विषय की मौजूदा हालत पर रोशनी डाल सकती हैं। शारीरिक शिक्षा के शिक्षकों के पास विभिन्न कक्षाओं के हिसाब से तैयार किए हुए पाठ्यक्रम ही नहीं हैं, जिनमें शरीर और जीवन से जुड़े ऐसे कौशल सिखाने पर ज़ोर दिया गया हो, जो अपनी उम्र के लिहाज से बच्चे को आने चाहिए।

शिक्षकों के प्रशिक्षण का अभाव

पिछले बारह वर्षों में हरियाणा के शारीरिक शिक्षा के अध्यापकों को किसी भी तरह का कोई प्रशिक्षण नहीं मिला, जो उन्हें अपने ज्ञान को उन्नत करने या अपने सहकर्मियों के साथ सीखने-सिखाने के मौक़े प्राप्त करने में मदद कर सके।

शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं?

2005 में एनसीएफ़ द्वारा तय किए गए शिक्षा के कुछ उद्देश्य इस तरह से हैं :

'लोकतंत्र, समानता, न्याय, स्वतंत्रता, परोपकार, धर्मनिरपेक्षता, मानवीय गरिमा व अधिकार तथा दूसरे के प्रति आदर जैसे मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता; विचार तथा क्रिया की आज़ादी, स्वतंत्र तथा सामूहिक रूप से सावधानीपूर्वक विचार किए गए मूल्य-निर्धारित निर्णय लेने की क्षमता की तरफ इशारा करते हैं; दूसरे लोगों की भावनाओं व कल्याण के प्रति संवेदनशीलता; सीखने के लिए सीखना, जो सीखा है उसे छोड़ने की और दुबारा सीखने की तत्परता।' (एनसीएफ़ 2005)

अब आगे हम शारीरिक शिक्षा के माध्यम से इन मूल्यों को सीखने के अपने अनुभवों को साझा करेंगे।

पूर्वज्ञान को छोड़ना एवं कार्य के माध्यम से नया ज्ञान अर्जित करना

खेलों में किसी भी हुनर को सिर्फ़ करते हुए ही सीखा जाता है, इसके अलावा और कोई तरीक़ा नहीं है। यहाँ इस बात पर ध्यान देना भी ज़रूरी है कि यह सक्रिय हिस्सेदारी मानसिक भी होती है और शारीरिक भी। अगर आप फ़ुटबाल सीखना चाहते हैं, तो सिर्फ़ खेल को देखना या उसके बारे में पाठ्यपुस्तक में पढ़ लेना ही काफ़ी नहीं है। आपको मैदान में उतरना होगा, दिमाग़ लगाना होगा, और किक में महारत हासिल करने के लिए लम्बे समय तक उसका अभ्यास करना होगा। हमारी कक्षाओं में विद्यार्थी अभ्यास कार्य करते हुए ही अपने हुनर और ज्ञान को निखारते हैं, अपनी ही रफ़्तार से अपना विशेष अनुभव इकट्ठा करते हुए।

साहिल, नई दिल्ली के हमारे एक स्कूल का तीसरी कक्षा का विद्यार्थी है, जिसे आँख-मिचौली खेलना बहुत पसन्द है। इस खेल में एक त्रिभुज के आकार में तीन शंकुओं पर छह गुम्बदों (गोलों) को टिकाना होता है। तीन मिनट में हर शंकु पर दो गुम्बद टिकाने होते हैं। शर्त सिर्फ़ इतनी होती है कि टीम के एक सदस्य की आँखों पर पट्टी बँधी होगी, जबकि बाक़ी के तीनों खिलाड़ी समय सीमा के अन्दर लक्ष्य हासिल करने के लिए उसे सही तरीक़े से सुझाव और हिदायतें देंगे।

आँख-मिचौली के अपने एक सत्र में हमने उस गेम को लगातार तीन बार खेला। तीनों बार साहिल ने ही अपनी आँखों पर पट्टी बँधवाई और हर बार अपनी टीम को जितवाया भी और वो भी दो मिनट से कम समय में।

सत्र के अन्त में जब मैं सारा सामान इकट्ठा कर रही थी, साहिल मेरा काम ख़त्म होने का इन्तज़ार कर रहा था जबकि उसकी कक्षा के सारे बच्चे जा चुके थे। वो मेरे पास आया और बोला,

साहिल की आँखों पर बँधी पट्टी की पड़ताल करते हुए

"दीदी, मैंने आज हेरा-फेरी की, नीचे से मुझे सब दिखाई दे रहा था। हालाँकि तीनों बार मैं जीता, लेकिन मुझे सचमुच मज़ा नहीं आया और न ही जीतना इतना अच्छा लगा। अगर मैं बिना हेरा-फेरी के जीता होता, तो मुझे खेल का कहीं ज़्यादा मज़ा आया होता!"

45 मिनट के समय में साहिल ने पहले यह सीखा कि अगर वह हेरा-फेरी करता है तो वह आसानी से जीत जाएगा और इनाम हासिल कर लेगा। सत्र के अन्त में उसने पहले सीखे हुए सबक़ को छोड़ा और नए सिरे से इस बात को सीखा कि हेरा-फेरी से असल में खेल का मज़ा मारा जाता है और यह भी कि इस तरह से जीतकर उसे उतना अच्छा नहीं लगा जितना ईमानदारी से जीतने पर लगता है।

साथियों से सीखना

एक और महत्त्वपूर्ण बात जो बच्चे एक-दूसरे से सीखते हैं वह है - विचारों की स्वतंत्रता और दूसरों के प्रति संवेदनशीलता।

बहुत सारे बच्चे जब किसी चीज़ के बारे में शिक्षक से पूछते हैं, तो एक बार पूछना तो उन्हें बिलकुल आसान लगता है, लेकिन दूसरी बार उसी सवाल को पूछने में उन्हें थोड़ी झिझक होती है। ऐसे में अपने सहपाठियों और बड़ी कक्षा के किसी विद्यार्थी से पूछने में उन्हें ज़्यादा आसानी होती है। हमारे प्रोग्राम में हम इस बात को बढ़ावा देते हैं कि बड़े बच्चे, छोटी कक्षा के बच्चों को पढ़ाएँ। यह दोनों ही पक्षों के लिए बेहतर होता है। छोटे बच्चे ऐसी कक्षाओं का मज़ा लेते हैं क्योंकि बड़ी उम्र के अपने साथियों के साथ किसी चीज़ को सीखते या उसका अभ्यास करते हुए वह ज़्यादा सहज होते हैं, जबकि बड़े बच्चे स्वतंत्र रूप से काम करना सीखते हैं और छोटे बच्चों को सिखाने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेते हैं।

सुमित और राहुल, अम्बाला के एक स्कूल में आठवीं कक्षा के विद्यार्थी हैं, जब उनके शारीरिक शिक्षा के शिक्षक कहीं व्यस्त होते हैं या छुट्टी पर होते हैं तो वे छोटे बच्चों की कक्षा

लेते हैं। सुमित और राहुल दोनों ने ही पढ़ाते वक़्त कई तरह की चुनौतियों का सामना किया। मिसाल के लिए उन्होंने देखा कि छठी कक्षा की एक लड़की, जिसकी क्षमताएँ दूसरों से अलग थी, खेलों के उनके सत्र में हिस्सा नहीं लेती थी। हफ़्ता भर यह देखने के बाद कि वह बस बैठे-बैठे कक्षा के दूसरे बच्चों को

8 वीं कक्षा के सुमित और राहुल छठी के बच्चों की खेलों की क्लास लेते हुए

मस्ती करते हुए देखती रहती है, उन्होंने यह फैसला किया कि उसे भी खेल में शामिल किया जाना चाहिए। शुरू में कक्षा का कोई बच्चा उसे अपनी टीम में नहीं लेता था। फिर सुमित और राहुल ने भी खेलों में हिस्सा लेना शुरू किया और वह हमेशा अपनी टीम में सबसे पहले उसे ही चुनते। धीरे-धीरे सारी कक्षा ने यह स्वीकार किया कि खेलने का हक़ तो उस लड़की का भी है और वह उसे खेल में शामिल करने के रचनात्मक तरीक़े भी ढूँढ़ने लगे।

खेल के मैदान में खड़ी हुई एक अनोखी समस्या का सुमित और राहुल ने अपने तरीक़े से हल निकाला। उस लड़की की भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता और खेलों में निहित सबको शामिल करने की भावना, यह दोनों ही उनके फ़ैसले का आधार बने।

टीम में काम करते हुए लोकतांत्रिक मूल्यों को सीखना

प्रत्येक सत्र के लिए हम जो भी खेल या गेम डिज़ाइन करते उनके पीछे एक ही बुनियादी सिद्धान्त रहता था- हम सिर्फ़ टीम में खेले जाने वाले खेल को ही चुनते। जब हम टीम बनाकर खेलते हैं तो उससे सीखने की प्रक्रिया में बहुत तेज़ी आ जाती है। वहाँ बच्चों को अपनी और विरोधी, दोनों ही टीमों के साथ अन्तर्क्रिया के दौरान समानता, एक-दूसरे का सम्मान करने और न्याय की भावना को सीखने के मौक़े मिलते हैं। टीम में खेलते हुए बच्चे को अपने आप से ऊपर उठकर एक व्यापक परिपेक्ष्य में सोचना पड़ता है। किसी भी टीम को जीतने के लिए लोकतांत्रिक तरीक़े से काम करना पड़ता है। अगर टीम के सदस्य एक-दूसरे के साथ न्यायपूर्ण और समानता का व्यवहार नहीं करते, एक-दूसरे के विचारों का आदर नहीं करते और प्रत्येक सदस्य को स्वतंत्र रूप से सोचने और आगे बढ़ने के मौक़े नहीं देते तो वे कभी भी एकजुट टीम के रूप में नहीं उभर पाएँगे और ऐसे में उन्हें हर बार हार का सामना करना पड़ेगा। टीम के हर सदस्य को एक रचनात्मक भूमिका निभानी होती है और इस बात को सुनिश्चित करना पड़ता है कि टीम के सभी सदस्य टीम में अपनी भूमिका के महत्त्व को समझें और उससे सहमत हों।

इसकी एक मिसाल फ्रिस्बी का खेल है। यह अपने आप में अनूठा है क्योंकि इसमें लड़के-लड़की का कोई भेद-भाव नहीं, और इसका सारा ज़ोर खेल पर और खेल भावना पर ही है। एक स्कूल की फ्रिस्बी टीम में शुरू में हमें एक चुनौती का सामना करना पड़ा, जहाँ सारा खेल कुछ चुने हुए खिलाड़ियों के (ज़्यादातर लड़कों के) बीच ही चलता और बाक़ी खिलाड़ियों (ज़्यादातर लड़कियों) को डिस्क को पकड़ने का मौक़ा ही नहीं मिलता था। शिक्षकों ने लड़कियों को खेल में शामिल करने के लिए लड़कों को खूब प्रेरित किया, लेकिन उसका कुछ फ़ायदा नहीं हुआ। दरअसल, टीम के खिलाड़ियों को एक-दूसरे पर भरोसा ही नहीं था।

जैसे-जैसे टीम ने खेल को समझा और बेहतर तरीक़े से खेलना शुरू किया, तो उन्हें यह बात समझ में आई कि टीम के हर सदस्य को पास देने का क्या महत्त्व है। जब डिस्क सिर्फ़ लड़कों के पास ही रहती तो विरोधी टीम के लिए बड़ी आसानी हो जाती, क्योंकि उन्हें सिर्फ़ लड़कों को ही रोकना होता और वे जीत जाते। जैसे ही लड़के अंक हासिल करने का सारा दबाव अपने ऊपर लेते, तनाव की वजह से डिस्क उनके हाथों से

एक फ्रिसबी टूर्नामेंट में हमारे दिल्ली स्कूल की टीम। जितना ही वो एक-दूसरे पर भरोसा करते उतना ही एक टीम के रूप में बेहतर खेलते।

निकलने लगती। कई सत्रों के बाद, लड़कों को डिस्क पकड़ने और उन तक उसे पास करने के लिए लड़कियों पर भरोसा करना पड़ा। ऐसा होते ही लड़कियों ने और भी उत्साह से खेलना शुरू कर दिया। अपने खेल से उन्होंने ख़ुद को भी हैरान कर दिया और लड़के इस बात से अचम्भित थे कि लड़कियाँ कितना अच्छा खेल सकती हैं।

एक स्कूल स्तर के फ्रिस्बी खेल ने लड़कों को यह समझने में मदद की कि लड़कियों के साथ उनका व्यवहार अपमानजनक और अन्यायपूर्ण था और अपनी टीम के लिए प्रदर्शन करने की उनकी स्वतंत्रता में रुकावट बन रहा था। जीतने की ज़ोरदार इच्छा ने उन्हें अपने व्यवहार पर फिर से सोचने और लड़कियों को अपने बराबर मानने के लिए मजबूर कर दिया। एक लड़की को पहला पास देने के साथ ही उन्होंने इन लोकतांत्रिक मूल्यों को अपने व्यवहार में लाने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जाहिर कर दी।

मैदान के ऐसे कितने ही अनुभवों को देखते हुए, हम पूरे विश्वास के साथ यह कह सकते हैं कि यदि हमारे सरकारी स्कूलों में, शारीरिक शिक्षा के एक बेहतर पाठ्यक्रम को पूरे ज़ोर-शोर से लागू कर दिया जाए तो वह शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि हालाँकि हमारे व्यावहारिक अनुभव इस बात के पर्याप्त सबूत देते हैं कि शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा करने में शारीरिक शिक्षा एक ख़ास योगदान दे सकती है, लेकिन साथ ही हमें सांस्कृतिक सन्दर्भ और किसी पाठ्यक्रम को निर्धारित करने में उसकी भूमिका पर भी ग़ौर करना चाहिए। कलाओं की ही तरह, खेल और शारीरिक शिक्षा भी तभी जीवन्त होते हैं जब उनकी जड़ें उस समुदाय में हो जिसमें उन्हें काम करना है। स्थानीय समुदाय को और चिर-स्थाई सामाजिक मूल्यों को सीखने के लिए स्थानीय खेलों को शामिल करना, स्कूली पाठ्यचर्या में शारीरिक शिक्षा की जड़ों को गहराई देने में एक केन्द्रीय भूमिका निभा सकता है।

अदिति मुतातकर बैडमिन्टन की एक शानदार खिलाड़ी रही हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खेल चुकी हैं। 2010 में उन्होंने कॉमनवेल्थ खेलों में भारत के लिए रजत पदक हासिल किया था। उन्होंने टेक्सास विश्वविद्यालय, डेलास से पब्लिक अफेयर्स में पोस्ट-ग्रैजुएशन की डिग्री हासिल की है। वे *'आर्ट ऑफ़ प्ले'* फ़ाउंडेशन में पाठ्यचर्या की रूपरेखा बनाने वाली टीम का हिस्सा हैं। यह फ़ाउंडेशन सरकारी स्कूलों में शारीरिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए प्रतिबद्ध है। उनसे *aditi@artofplay.co.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

आकाश लुगुन गाँधी फैलो हैं और उन्होंने सूरत के सरकारी स्कूलों में खेल-शिक्षा को लागू करने में एक बड़ी भूमिका निभाई थी। इन दिनों वह *'आर्ट ऑफ़ प्ले'* फ़ाउंडेशन की तरफ़ से फ़रीदाबाद के तीस स्कूलों में शिक्षकों की ट्रेनिंग के लिए चलाए जा रहे प्रोग्राम के मुख्य संचालक हैं। वंचित समाज के लिए एक फ़ुटबाल स्कूल की स्थापना करना उनका सपना है। उनसे *akash@artofplay.co.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : बलराम बोधि **पुनरीक्षण** तथा **कॉपी एडीटिंग** : स्वाति भदौरिया

दीवार पत्रिका : कक्षा-कक्ष से बाहर सीखने-सिखाने की नायाब खिड़की

अनिल सिंह

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा 2005 के अन्तर्गत 'शिक्षा के लक्ष्य' विषय का राष्ट्रीय फोकस समूह अपने आधारपत्र में यह बात स्पष्ट रूप से कहता है कि स्कूली व्यवस्था में एक विशेष तरह की कठोरता है जो बदलाव के मार्ग में बाधा की तरह खड़ी हो जाती है। फोकस समूह इस बात को भी स्वीकार करता है कि 'सीखना' एक प्रकार से अलग-थलग गतिविधि हो गई है जो बच्चों को अपने ज्ञान को जैविक व जीवन्त तरीक़े से जीवन से जोड़ने को प्रोत्साहित नहीं करती।

हमारा अनुभव बताता है कि स्कूल अपने आप में एक सत्ता-केन्द्र रहा आया है और शिक्षक उसके एक प्रतिनिधि के रूप में पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से इस सत्ता को साधने की कोशिश करता है। कक्षा-कक्ष में यह भली-भाँति चलता है और सीखने-सिखाने की इस केन्द्रीकृत प्रक्रिया में सीखने वाले का ज्ञानशास्त्रीय उद्यम विरले ही इस्तेमाल होता है। यही कारण है कि सवालों के तयशुदा जवाब, किताबी भाषा और किताबी उदाहरण, अप्रासंगिक तर्क और आधार, नीरस विश्लेषण और जीवन से कटे हुए अनुभव देखने को मिलते हैं। इसलिए सीखने-सिखाने के तरीक़ों और नज़रिए की समीक्षा होती रहनी चाहिए।

कक्षा-कक्ष के बाहर, जीवन से जुड़ी ऐसी तमाम विधाएँ व विधियाँ हैं जो सीखने-सिखाने को न सिर्फ़ जीवन्त बनाती हैं बल्कि सीखने वाले के ज्ञानशास्त्रीय उद्यम के कई घटकों को उस प्रक्रिया में शामिल भी करती हैं। इस आलेख में एक ऐसी ही विधि के बारे में चर्चा की गई है जिसे हम 'दीवार-पत्रिका' के नाम से जानते हैं।

दीवार-पत्रिका को स्कूल में आमतौर पर ग़ैर-अकादमिक गतिविधि के रूप में देखा और माना जाता है क्योंकि इसमें पाठ्यक्रम से इतर सामग्री होती है, यह कक्षा-कक्ष के बाहर सम्पन्न होती है, शिक्षक के नियंत्रण और देख-रेख के बिना भी सम्भव है, इसका कोई तयशुदा स्वरूप नहीं और इसमें सीखने वालों की स्वायत्तता अपेक्षाकृत अधिक होती है। कई बार तो यह आर्ट एंड क्राफ्ट की क्लास में तब्दील होते देखी गई है। मुश्किल, आर्ट एंड क्राफ्ट से नहीं बल्कि इसके उद्देश्य से भटक जाने की है। कमाल की बात तो यह है कि इसका यही तथाकथित ग़ैर-अकादमिक स्वरूप ही इसकी ज़बर्दस्त ताक़त है। इसकी इस ताक़त को यहाँ हम सिलसिलेवार ढंग से समझने की कोशिश करेंगे।

शिक्षा के उद्देश्य पर एनसीएफ़ 2005 की टिप्पणी है कि सीखने वाला यदि खोजने की तरफ प्रवृत्त न हो तो फिर सीखना-सिखाना व्यर्थ हुआ। इस रोशनी में दीवार पत्रिका को देखें तो वह बच्चों को, चुने गए टॉपिक के इर्द-गिर्द सामग्री खोजने को प्रेरित करती है। पाठ्यपुस्तक से बाहर चीज़ों पर नज़र डालना, जीवन के अनुभवों को तराशना, कल्पना के घोड़े दौड़ाना वगैरह। और वह भी ख़ुद की पहल पर, ख़ुद की ग़रज़ से। पाठ्यपुस्तक से बाहर खोजने और परखने का जो उन्मुक्त सिलसिला शुरू होता है वह सही मायनों में रचनात्मकता को बढ़ावा देता है। आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल में 'आज़ादी' विषय पर दीवार-पत्रिका तैयार करते समय बच्चे सिर्फ़ किताबी आज़ादी के बारे में नहीं सोच रहे थे जो कि अँग्रेज़ी हुकूमत से मुक्त होने के सन्दर्भ तक सीमित थी बल्कि वे किताब से बाहर विविध मायनों में आज़ादी पर विचार कर रहे थे। सबके लिए आज़ादी के अलग अर्थ रहे। पशु-पक्षियों की क़ैद और आज़ादी भी उनके सोचने के विषय रहे। आज़ादी पर किसी किताबी कविता को चुनने की बजाए उन्होने ख़ुद नई कविता लिखना पसन्द किया। स्कूल में शिक्षकों से, साथियों से और परिजनों से बात कर उनके लिए आज़ादी के मायने खँगाले और तब जाकर आज़ादी विषय पर उनकी दीवार-पत्रिका तैयार हुई।

दीवार-पत्रिका जहाँ एक ओर रचनात्मकता के दरवाजे खोलती है वहीं दूसरी ओर विविध जीवन-कौशल सीखने के मौक़े भी बना रही होती है। शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों के हवाले से

बात करें या विषयगत उद्देश्यों की, दोनों ही लिहाज से इन जीवन-कौशलों को महत्त्वपूर्ण माना गया है। दीवार-पत्रिका के बहाने बच्चे समूह में काम करने, समूह में अपनी जगह बनाने, तार्किक बहस करने, उपयुक्त सामग्री का चयन करने, एक-दूसरे के मतों-अभिमतों का सम्मान करने, असहमतियों को स्वीकारने और समन्वय बनाने जैसे जीवन-कौशल सीख रहे होते हैं। और यह सीखना बिल्कुल जैविक तरीक़े से होता है, उन्हें कोई सिखा नहीं रहा होता। वह छोटा-सा समूह, एक पूरा समाज बन जाता है और सामाजिक तौर-तरीक़े उसकी ज़रूरत बन जाते हैं। लक्ष्य एक ही होता है, बेहतर दीवार-पत्रिका निकालना।

स्कूल में जहाँ एक तरफ पढ़ना-लिखना सिखाने को लेकर तमाम चिन्ताएँ और प्रयास चल रहे होते हैं वहाँ यह बात छूट ही जाती है कि इस लिखने-पढ़ने की ऊर्जा, इसकी जीवन्तता और अर्थवेत्ता कैसे बनाई और कायम रखी जा सके। यदि लिखना-पढ़ना किसी सामान्यीकृत उपलब्धि की बजाए, विशिष्ट उपलब्धि की प्रेरणा बन सके, तो वह न सिर्फ़ मज़ेदार बल्कि अर्थपूर्ण भी हो सकता है। ऐसे में दीवार-पत्रिका को आकर्षक, पढ़ने लायक और लोगों के ध्यान का केन्द्र बनाने जैसा लक्ष्य इसकी ऊर्जा का स्रोत बन जाता है। कक्षा के भीतर के रुटीन और किताबी सवाल-जवाब के लेखन में इस ऊर्जा का नितान्त अभाव होता है। उसे आकर्षक, पढ़ने लायक और लोगों के ध्यान का केन्द्र बनाने जैसी बात वहाँ कहाँ? शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों में जहाँ कौशलों की बात होती है वहाँ समुदाय की इच्छाओं, आकांक्षाओं से जुड़े कौशलों की भी बात होती है। इसे मोटेतौर पर सौन्दर्यशास्त्रीय कौशलों के रूप में देखा जा सकता है। दीवार-पत्रिका में लेखन, इसका निर्माण, इसकी सजावट और प्रस्तुति इन सौन्दर्यशास्त्रीय कौशलों का ख़ूब पोषण करती है।

दीवार-पत्रिका के लिए लिखा गया यात्रा संस्मरण किसी प्रश्न के उत्तर में नही लिखा गया, और न ही कविता, हिन्दी व्याकरण के किसी रस या भाव के उदाहरण स्वरूप लिखी गई है। बल्कि वह स्वतःस्फूर्त सृजन है, उन्मुक्त और मौलिक है। यह लेखन या चित्रकारी सहज ही आई है, किसी के दबाव में नहीं। ऐसी रचना ही शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा कर पाएगी। स्पर्धा के इस युग में बच्चों के आत्मविश्वास और व्यावहारिक समझ की काफ़ी बातें होती हैं और शिक्षा से यह उम्मीद भी लगाई जाती है कि वह समाज की इन अपेक्षाओं और आकांक्षाओं को पूरा करे। एनसीएफ़ 2005 भी अलग-अलग ज़रिए से इनकी बातें करता है और एक बेहतर नागरिक के निर्माण में शिक्षा के इस योगदान को रेखांकित करता है। सीखने-सिखाने के विकेन्द्रीकृत तौर-

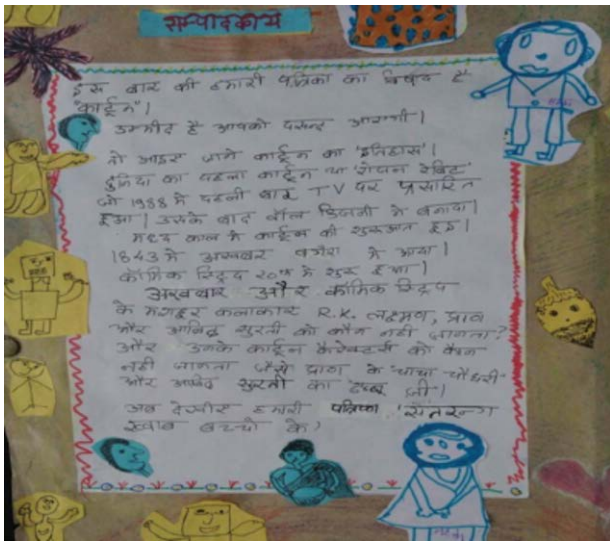

तरीक़े, बच्चों की समझ और उनकी मेधा पर भरोसा और कक्षा-कक्ष में गुरुता का स्थगन ही इसके साधन हो सकते हैं। क्रियाकलापों और प्रोजेक्ट की योजना बनाने से बच्चों में जिस आत्मविश्वास और व्यावहारिक समझ का निर्माण होता है वह कक्षा-कक्ष के भीतर शिक्षक के एकतरफा सम्भाषण से सम्भव ही नहीं। इस क्रम में दीवार-पत्रिका एक मुकम्मल प्रोजेक्ट की तरह पेश आती है। जिसमें विविध हस्त-कौशल गतिविधियों के साथ ही योजना बनाने, ज़िम्मेदारी बाँटने, दक्षताओं की पहचान करने और योजना का क्रियान्वयन करने जैसी समझ शामिल है।

दीवार-पत्रिका के इन क्रियाकलापों/ सामग्री के माध्यम से पाठ्यक्रम में स्थानीय सन्दर्भ और विविध सांस्कृतिक सन्दर्भों को समाहित करने का रास्ता भी खुलता है। बच्चे अपने जीवन-अनुभवों, रीति-रिवाजों और मान्यताओं के लिए उसमें जगह बनाते हैं। एक-दूसरे की पृष्ठभूमि से परिचित होते हैं। पाठ्यपुस्तक में आए विषय, दीवार-पत्रिका के ज़रिए विस्तार पाते हैं। विषयवस्तु में नए आयाम जुड़ते जाते हैं। एनसीईआरटी की कक्षा 3 की *रिमझिम* में कविता '*मन करता है*' ऐसा ही एक उदाहरण बना। बच्चों ने इसी शीर्षक से अपनी

दीवार-पत्रिका तैयार की। बच्चों द्वारा तैयार दीवार-पत्रिका की विषयवस्तु, शिक्षक के लिए आगे की दृष्टि और पाठ-सामग्री बन गई। कई बार कक्षा-कक्ष के भीतर नहीं हो सकने वाली बात कक्षा-कक्ष के बाहर दीवार-पत्रिका के बहाने हो जाती है और पाठ्य-सामग्री को समृद्ध बनाती है।

दीवार-पत्रिका पर सवार होकर पाठ्यपुस्तक एक गतिशील दस्तावेज़ बन जाती है। उसके एक-एक पाठ से बच्चों के जीवन, उनके अनुभवों, आकांक्षाओं और दृष्टिकोण के कई-कई धागे निकलते हैं। इन धागों के ताने-बाने में बुनी गई दीवार-पत्रिका कक्षा-कक्ष के बाहर एक पूरा संसार रच सकती है, जो शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों के साथ ही विषयगत लक्ष्यों को भी पूरा कर सकती है। ज़रूरत इस बात की है कि शिक्षक और स्कूल प्रबन्धन इसके महत्त्व को समझे, इसे सीखने- सिखाने की एक मुकम्मल विधि के रूप में स्वीकारे और बच्चों को इसकी स्वायत्तता दे। शिक्षक के हस्तक्षेप से बाहर ही दीवार-पत्रिका का सौन्दर्य है।

अनिल सिंह विगत 15 वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय हैं, ख़ासकर स्कूली शिक्षा में। हिन्दी भाषा-शिक्षण के साथ ही थिएटर को विद्यार्थियों के लिए रोज़मर्रा का हिस्सा बनाने के काम से जुड़े हुए हैं। स्टोरी टेलिंग में ख़ास दिलचस्पी है। अनिल के कक्षा-अनुभवों एवं शिक्षा के अन्य मसलों पर लिखे आलेख नियमित रूप से प्रकाशित होते रहते हैं। वर्तमान में अनिल, आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल से जुड़कर शिक्षा के वैकल्पिक मॉडल पर काम कर रहे हैं। उनसे *bihuanandanil@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

विज्ञान एवं अन्धविश्वास

आशीष शर्मा

इस विषय पर मैंने विभिन्न विद्यालयों में कक्षा 5 से लेकर 12 तक के विद्यार्थियों एवं विभिन्न शिक्षकों के साथ काम किया है। छोटी कक्षाओं में मैंने सौरमण्डल, ग्रह, तारे, खगोलीय पिण्ड, नक्षत्र, चन्द्रमा की कलाएँ, ग्रहण इत्यादि पर बात की है। इनसे जुड़ी कई धारणाएँ एवं अन्धविश्वास समाज में व्याप्त हैं। सामान्य रूप से देखना एवं जानकारी/ज्ञान प्राप्त करने के लिए देखना दो अलग विषय हैं। सामान्यतः खगोलशास्त्र को विज्ञान विषय की एक शाखा के रूप में देखा जाता है किन्तु यहाँ खगोलशास्त्र के प्रयोगों द्वारा विज्ञान शिक्षण करने के सकारात्मक परिणाम नियमित रूप से प्राप्त हो रहे हैं।

कक्षाओं में शिक्षण के दौरान हम पाते हैं कि विद्यार्थी विज्ञान विषय को कठिन मानते हैं इसके अलावा लगभग सभी शिक्षकों का अनुभव कहता है कि सहायक सामग्री के अभाव में विज्ञान-शिक्षण चुनौतीपूर्ण होता है। चूँकि अन्तरिक्ष एक सबसे सुगम एवं सामान्य रूप से उपलब्ध संसाधन है जो कि पूर्ण रूप से विज्ञान की प्रकृति एवं प्रक्रियाओं का पालन करता है। इसके आधार पर वैज्ञानिक सिद्धान्तों को समझा जा सकता है।

अन्तरिक्ष विज्ञान के माध्यम से मैंने जो प्रमुख प्रयास शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के साथ किए उनमें सबसे पहला था अपने आस-पास वातावरण में घटित हो रही घटनाओं का अवलोकन करना एवं इनके होने का कारण जानना। इनसे जुड़े विभिन्न विचार सभी से समय-समय पर विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से लिए गए व इन पर चर्चा करने का प्रयास किया गया। सामान्यत: दैनिक जीवन से सम्बन्ध देखें तो दिन-प्रतिदिन होने वाली घटनाओं की समझ बनाने में वातावरण के वैज्ञानिक अवलोकन का पूर्ण योगदान दिखाई देता है। दिन-रात का बनना, ऋतुओं में परिवर्तन, पृथ्वी पर वातावरण की उपस्थिति इत्यादि कुछ ऐसे विषय हैं जो हमारे जीवन का अभिन्न अंग हैं। इसके अतिरिक्त आकाशीय पिण्डों एवं इनकी गति की समझ हमें विज्ञान के विभिन्न अनुप्रयोगों हेतु सहायता करती है जैसे विभिन्न उपग्रह स्थापित करना। इसी चर्चा में इनसे जुड़ी कुछ सामान्य धारणाएँ निकलकर आईं, जैसे सूर्य का ब्रह्माण्ड में सबसे बड़ा होना, ध्रुव तारे का सबसे चमकीला होना, मंगल-शनि-राहू-केतू का दिखाई देना, अपशकुन होना, पृथ्वी का कछुए की पीठ या बैल के सींग पर टिका होना इत्यादि। इनके अतिरिक्त कुछ कहानियाँ तारों, इनके सृजन इत्यादि से जुड़ी होती हैं जिन्हें जानना, समझना कार्य में और अधिक रुचि लेकर आया। उदाहरण के लिए ध्रुव तारे को सर्वोच्च स्थान, तारों का सभ्यताओं के विकास में योगदान, ग्रहों के नाम देवताओं के नाम पर होना इत्यादि ले सकते हैं।

हालाँकि विभिन्न सत्रों में विभिन्न विषयों को लेकर चर्चा व प्रस्तुतीकरण किया गया है लेकिन एक कार्य जो मुख्य रूप से हाल ही में किया गया है वह है चन्द्रमा एवं इसकी गति। इस हेतु 30 जनवरी 2018 को हुए चन्द्रग्रहण को एक व्यापक अवसर के रूप में देखा गया। इस पर अज़ीम प्रेमजी स्कूल, टोंक में ग्रहण के दौरान चर्चा व अवलोकन का कार्य किया गया। इस विषय पर अलग-अलग समूहों में चर्चा, प्रयोग एवं अवलोकन किए गए जिनसे चन्द्रमा से सम्बन्धित विभिन्न परिघटनाओं को समझने एवं समझाने में सहायता मिली।

चन्द्रमा की गति एवं अन्धविश्वास

30 जनवरी 2018 को साल का पहला चन्द्रग्रहण लगा। इसके अवलोकन एवं सामूहिक चर्चा का आयोजन विद्यालय प्रांगण में ही किया गया। यह चन्द्रग्रहण इसलिए भी ख़ास रहा क्योंकि इस दिन तीन खगोलीय घटनाएँ एक साथ हो रहीं थी। यह थीं ब्लडमून, सुपरमून और ब्लूमून। मैंने और विद्यालय के एक शिक्षक ने इस अद्भुत खगोलीय घटना को टेलिस्कोप द्वारा बच्चों के साथ देखने की योजना बनाई। सर्वप्रथम बच्चों को एक जगह पर इकट्ठा करके उनके साथ "ग्रहण" को लेकर उनके परिवेश में प्रचलित ग़लत धारणाओं के पीछे के कारणों पर विस्तार से बात की। यह सब उन्होंने अपने आस-पास घट रही घटनाओं और परिजनों से सुना था। जब भी ऐसी भ्रांतियाँ सामने आती हैं हम उन्हें तथ्यों द्वारा दूर करने का प्रयास करते हैं लेकिन यह आसान काम नहीं है। ज़रूरत होती है लगातार काम करने की और सभी को यह अवसर देने की कि वे स्वयं प्राप्त जानकारी के आधार पर अपने ज्ञान की जाँच करें।

चर्चा के बाद बच्चों को एक मॉडल के द्वारा पृथ्वी, चन्द्रमा की गतियों तथा ग्रहण (चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण) के बारे में बताया गया व नासा की ओर से किए जा रहे लाइव प्रसारण को भी दिखाया गया। इसके बाद बच्चों के ग्रहण सम्बन्धित अधिकांश सवालों के जवाब मिल चुके थे। अब बारी थी इस नज़ारे को प्रत्यक्ष रूप से देखने की। हमारे पास 2 टेलिस्कोप थे

तो हमने 5-5 बच्चों के समूह को, बारी-बारी से इस घटना को दिखाया, साथ ही प्रोजेक्टर पर NASA का लाइव प्रसारण भी जारी था। इसी दौरान आकाश से जुड़ी कुछ अन्य बातों पर भी बच्चों के साथ सवाल-जवाब चलते रहे। कुछ मुख्य चर्चाएँ, चमकीले तारों, ग्रहों एवं नक्षत्रों की खोज, तारों के रंग, विभिन्न तारों से जुड़ी कहानियों इत्यादि पर रहीं। यह बात स्पष्ट थी कि भले ही बच्चे परिभाषाएँ न जानते हों लेकिन इस विषय में उन सभी की जानकारी सामान्य स्तर से कहीं अधिक थी।

विषय-विश्लेषण

कुछ सामान्य विश्वास या कहें कि अन्धविश्वास हैं जो कि विभिन्न कक्षा-स्तर के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के साथ समय-समय पर की गई चर्चा में सामने आए। कई सारे अन्धविश्वासों के पीछे भय बनाने, कुछ सामाजिक-व्यावहारिक नियमितता लाने, कुछ स्वास्थ्य सम्बन्धी अभ्यास करने इत्यादि मुख्य रूप से दिखाई पड़ते हैं। लेकिन इन्हीं के साथ कुछ अन्य विचार ऐसे भी हैं जो काफ़ी गहराई तक व्याप्त हैं जिनकी व्याख्या नहीं की जा सकती। जैसे :

- गर्भवती महिला को ग्रहण नहीं देखना चाहिए
- ग्रहण के समय खाया गया अन्न, दिया गया दान, किया गया कार्य असुर शक्तियों को प्राप्त होता है
- ग्रहण को देखने से अन्धे हो जाते हैं
- अमावस्या एवं आत्माएँ
- विवाहित महिलाओं का केश धोना वर्जित है
- ग्रहण की काली छाया अथवा बुरे प्रभाव को साफ़ करने के लिए स्नान करना
- दाढ़ी बनाने, बाल काटने, नाखून काटने इत्यादि की मनाही
- नवीन कार्य का आरम्भ वर्जित
- दान/धर्म कर स्वयं से इसके प्रकोप को कम/दूर करना
- कपड़ों, वस्तुओं इत्यादि पर तुलसी एवं गंगा जल छिड़ककर शुद्ध करना

इन्हीं सामान्य चर्चाओं में कुछ ऐसे प्रश्न निकलकर आए जिन्हें वैज्ञानिक आधारों पर जाँचा। इन्हीं में से कुछ प्रश्नों पर चर्चा करने का प्रयास किया गया जो कि निम्नवत हैं :

- क्या चन्द्रमा का स्वयं का प्रकाश है अथवा कोई अन्य स्त्रोत है?
- क्या चन्द्रमा भी पृथ्वी के समान गति करता है? (घूर्णन एवं परिक्रमण) यदि हाँ तो हमेशा एक जैसा ही क्यों दिखाई देता है?
- क्या चन्द्रमा की कलाएँ पृथ्वी की छाया के कारण बनती हैं?
- ग्रहण क्यों होता है?
- यदि पृथ्वी के, चन्द्रमा एवं सूर्य के बीच आने से ग्रहण होता है तो यह रोज़ या हर महीने क्यों नहीं होता?
- क्या पृथ्वी पर जीवन में चन्द्रमा का कोई योगदान है?

उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर दो मुख्य चरणों में प्राप्त किए जा सकते हैं, पहला उपरोक्त घटनाओं के घटित होने के कारण को समझना एवं दूसरा इस समझ के आधार पर विभिन्न मतों/विश्वासों/अन्धविश्वासों की जाँच करना। दैनिक जीवन में यदि चन्द्रमा की उपस्थिति एवं उपयोगिता देखी जाए तो पता चलता है कि हमारे पंचाँग चन्द्रमा की गति एवं दृश्यता (कृष्ण पक्ष-शुक्ल पक्ष) के आधार पर बने हैं। इसी के साथ भारतीय वर्ष/पंचाँग में आने वाले व्रत (करवा चौथ, रमज़ान), त्यौहारों (दीपावली, जन्माष्टमी), पूजा-पाठ, ज्योतिष (कुंडली में स्थान, राशि का स्वामी) इत्यादि का निर्धारण भी इसकी गति एवं दृश्यता के आधार पर किया जाता है। हमारा साहित्य भी चन्द्रमा एवं इसकी विभिन्न कलाओं को विभिन्न मुहावरों, उपमाओं, उदाहरणों, कहानियों, रिश्ते-नातों, परम्पराओं इत्यादि से जोड़कर देखता है। यहाँ तक सब कुछ ठीक है लेकिन जैसे ही चर्चा ग्रहण पर आती है वैसे ही कई कुरीतियाँ, मान्यताएँ, प्रक्रियाएँ, अन्धविश्वास इत्यादि जन्म लेने लगते हैं। जो कि मौखिक रूप से ही स्थानान्तरित होते आ रहे हैं और इन पर सवाल उठाना या इन्हें अस्वीकार करना आसान बात नहीं है। यही कारण है कि यह दिन-प्रतिदिन और अधिक गहरे होते जाते हैं।

विभिन्न पाठ्यपुस्तकों में चन्द्रमा एवं इससे सम्बन्धित सिद्धान्तों/जानकारियों को स्थान दिया गया है जैसे चन्द्रमा की कलाएँ, चन्द्रमा के यात्री, चन्द्रमा का धरती के साथ सम्बन्ध, ज्वार एवं भाटा, चन्द्रमा का अपने अक्ष पर घूर्णन इत्यादि। लेकिन किसी भी सामाजिक विश्वास, प्रक्रिया, अन्धविश्वास को दूर करने पर चर्चा नहीं की गई है। पाठ्यपुस्तक इन अन्धविश्वासों पर कार्य करने का एक अच्छा माध्यम हो सकती है क्योंकि इनका प्रयोग विभिन्न स्तर के विद्यार्थियों द्वारा किया जाता है जो ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में होते हैं। ऐसे समय में इनके समक्ष तार्किक विश्लेषण रखा जाना ग़लत धारणाओं के पनपने एवं प्रगाढ़ होने को रोकने में सहायक हो सकता है।

उपरोक्त प्रश्नों में पाठ्यपुस्तक एवं दैनिक जीवन दोनों से जुड़ाव देखा जा सकता है। जहाँ पुस्तक इसके वैज्ञानिक एवं तार्किक अध्ययन को पुष्ट करती है वहीं दैनिक व्यवहार अन्धविश्वासों, भ्रामक धारणाओं एवं अतार्किक मान्यताओं से भरा है। यह इसी रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरित होते रहते हैं जिन पर कभी कोई सवाल नहीं किया जाता व यह जस-के-तस मान लिए जाते हैं। इसी अन्धविश्वास को तोड़ने हेतु कुछ

और जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया। जहाँ यह निष्कर्ष निकला कि सिर्फ़ हमारे समाज में ही नहीं, ग्रहण से जुड़े कई अन्धविश्वास सभी धर्मों एवं भौगोलिक क्षेत्रों में व्याप्त हैं।

उपरोक्त प्रश्नों को अध्ययन एवं समझ की सहूलियत के लिए निम्न चरणों में बाँटा जा सकता है :

- चन्द्रमा की एक ही सतह का दिखाई देना (चन्द्रमा का एक भाग हमेशा अँधेरे में रहता है)
- चन्द्रमा की कलाओं का बनना (अवलोकन आधारित गतिविधि)
- ग्रहण की प्रक्रिया को समझना (प्रकाश स्त्रोत से स्थिति, अवरोध, तल, झुकाव, आंशिक एवं पूर्ण ग्रहण)

उपरोक्त जानकारी के आधार पर अन्धविश्वासों की सत्यता जाँचना एवं गलत धारणाओं को दूर करना ज़रूरी था। देखा जाए तो सूर्यग्रहण चार पहर एवं चन्द्रग्रहण तीन पहर का माना जाता है। अतः इससे इनकी गति के आधार पर एवं गति के प्रकार पर अच्छी समझ बनाकर वैज्ञानिक विश्लेषण प्राप्त किया जा सकता है।

यहाँ सबसे पहले यह जानने की आवश्यकता है कि क्या चन्द्रमा गतिमान है या नहीं। चन्द्रमा, अण्डाकार पथ पर, पृथ्वी के चारों ओर एक चक्कर लगभग 27.3 दिन में पूरा करता है। इसी के साथ चन्द्रमा अपने अक्ष या धुरी पर भी चक्रण करता है जिसमें यह पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाने में लगे समय के लगभग समान समय लेता है। अन्तरिक्ष विज्ञान की भाषा में इसे सिन्क्रोनस रोटेशन (synchronous rotation) या टाइडल लॉकिंग (Tidal Locking) कहते हैं। पृथ्वी से, चन्द्रमा की केवल एक ही सतह के दिखाई देने का यह प्रमुख कारण माना जाता है। सामान्य रूप से यह तय कर पाना कि चन्द्रमा अपने अक्ष पर घूर्णन करता है या नहीं कुछ कठिन कार्य है, लेकिन यदि इसके पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमण को हटाकर केवल चन्द्रमा के अक्षीय घूर्णन को देखें तो यह पता चलता है कि यह गतिशील है। दोनों गतियों को एक साथ समझ पाना व प्रदर्शित कर पाना भी कठिन कार्य है। इसके लिए एक सामान्य-सी गतिविधि मेरे द्वारा की गई जिसमें एक सफ़ेद गेंद (चन्द्रमा का प्रतिरूप) पर कुछ दूरी पर कुछ संख्याएँ लिखी गईं (4 ,3 ,2 ,1)। अब इस गेंद को ग्लोब (पृथ्वी का प्रतिरूप एवं गति का केन्द्र मानकर) के चारों ओर घुमाया गया। गेंद को ग्लोब के चारों ओर 2 स्थितियों में घुमाया गया, एक इसे स्थिर रखकर व दूसरा अपने अक्ष पर घूमते हुए।

प्रथम स्थिति में देखा गया कि ग्लोब के चारों ओर गेंद की अलग-अलग स्थिति में अलग-अलग संख्या केन्द्र की ओर होती है, अर्थात चन्द्रमा की विभिन्न सतहें पृथ्वी से दृष्टिगत होती हैं। दूसरी स्थिति में इसे ग्लोब के चारों ओर अपने अक्ष पर चक्रण करते हुए घुमाया गया। इसमें प्रयास यह किया गया कि ग्लोब के चारों ओर एक चक्कर पूरा करने के समान समय में ही यह अक्ष पर भी एक चक्रण पूरा करे। इस स्थिति में देखा गया कि ग्लोब के चारों ओर विभिन्न स्थितियों में एक ही संख्या दृष्टिगत हुई। यह गतिविधि चन्द्रमा की एक ही सतह हमेशा दिखाई देने के पीछे के वैज्ञानिक कारण को समझाने में सहायक सिद्ध हुई।

चित्र-1

चित्र-2

चन्द्रमा की पृथ्वी से दिखाई देने वाली सतह अधिक घनत्व वाली मानी गई है जिसके कारण पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण इसे हमेशा अपनी ओर खींचे रखता है। उपरोक्त सम्पूर्ण विश्लेषण से यह बात पुख़्ता की गई कि चन्द्रमा एक गतिशील पिण्ड है और यह जानकारी ग्रहण सम्बन्धी प्रश्नों की खोजबीन में हमारी सहायता करेगी।

गतिविधि : चन्द्रमा की कलाएँ

चन्द्रमा की कलाओं के बनने का कारण क्या है? कई लोग इसे चन्द्रमा पर पड़ने वाली पृथ्वी की छाया मानते हैं। कारण उन तक पहुँचाने के लिए मेरे द्वारा कुछ गतिविधियाँ एवं प्रस्तुतीकरण किए गए।

चन्द्रमा की कलाओं पर समझ बनाने का सबसे प्रभावी तरीक़ा है प्रत्यक्ष अनुभव। इस गतिविधि में एक प्रकाश स्रोत (बल्ब) लिया गया जो कि सूर्य का प्रतिरूप बना; एक सफ़ेद गोला या गेंद – जो कि चन्द्रमा का प्रतिरूप बना; व अन्त में

सम्भागी स्वयं - जो कि पृथ्वी के रूप में माने गए। (**चित्र-2**) इस गतिविधि की सहायता से यह दर्शाने का प्रयास किया गया कि चन्द्रमा की अपनी कोई रोशनी नहीं होती बल्कि वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। जो भाग सूर्य के सामने होता है केवल वही भाग रोशन होता है और बाक़ी हिस्से में अँधेरा होता है। पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाते समय इसके विभिन्न हिस्से प्रकाशित होते हैं इसलिए यह आकार बदलता प्रतीत होता है। माह के अलग-अलग दिनों में पृथ्वी से दिखाई देने वाले चन्द्रमा के प्रकाशित भाग का आकार उसकी स्थिति के अनुसार बदलता है जिन्हें चन्द्रमा की कलाएँ कहते हैं।

यह प्रदर्शित करने के लिए सम्भागियों को अपनी जगह पर घूमते हुए चन्द्रमा (सफ़ेद गोला या गेंद) को अपने चारों ओर घुमाने को कहा गया व गेंद के प्रकाशित भाग का विभिन्न स्थितियों पर अवलोकन करने को कहा गया। पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा का पूरा प्रकाशमान भाग पृथ्वी की ओर होता है। ऐसा तब होता है जब पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य के बीच में होती है (चन्द्रमा सूर्य के विपरीत तरफ़ होता है)। जब चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी के बीच होता है (चन्द्रमा का प्रकाशमान भाग सूर्य की ओर) तब हमें इसका अँधेरा भाग दिखाई देता है (अमावस्या)।

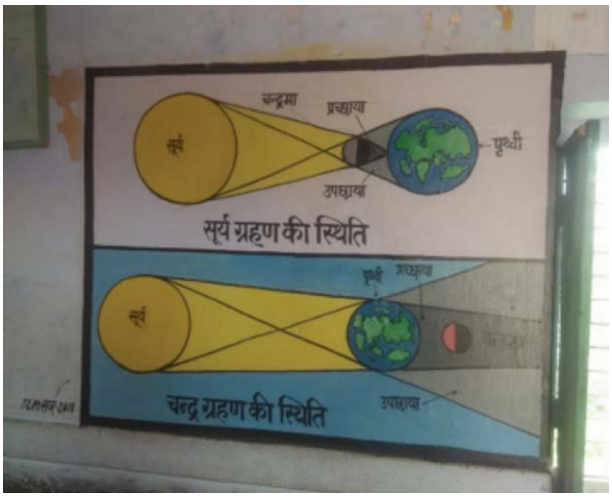

इस प्रस्तुतीकरण का एक फ़ायदा यह भी हुआ कि सम्भागियों में जो यह धारणा थी कि चन्द्रमा का एक हिस्सा हमेशा अँधेरे में रहता है (जिसे चन्द्रमा का अँधेरे वाला भाग या Dark side of the Moon कहा जाता है) बदल गई। सम्भागी यह देख पाए कि जिसे अँधेरे वाला भाग कहा जाता है वह अमावस्या के समय भी पूरी तरह से सूर्य के प्रकाश से प्रकाशमान रहता है।

चन्द्रमा की कलाओं पर समझ विकसित करने हेतु दूसरा जो प्रयास किया गया वह था चित्र की सहायता लेना। चित्र में एक ओर प्रकाश स्रोत सूर्य प्रदर्शित किया गया है व केन्द्र में पृथ्वी को रखा गया है। चन्द्रमा द्वारा पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा के दौरान विभिन्न समय पर बनने वाली स्थितियों की सहायता से विभिन्न कलाओं के निर्माण को प्रदर्शित किया गया था। यहाँ यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वी की छाया का कलाओं के बनने में कोई योगदान नहीं है। कलाएँ, चन्द्रमा की स्थिति के आधार पर केवल उसका प्रकाशित भाग हैं।

ग्रहण की प्रक्रिया को समझना

चन्द्रग्रहण उस खगोलीय स्थिति को कहते हैं जब चन्द्रमा पृथ्वी के ठीक पीछे उसकी प्रच्छाया में आ जाता है। ऐसा तभी हो सकता है जब सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा इस क्रम में लगभग एक सीधी रेखा में अवस्थित हों।

इस ज्यामितीय प्रतिबन्ध के कारण चन्द्रग्रहण केवल पूर्णिमा को घटित हो सकता है। चन्द्रग्रहण का प्रकार एवं अवधि चन्द्र

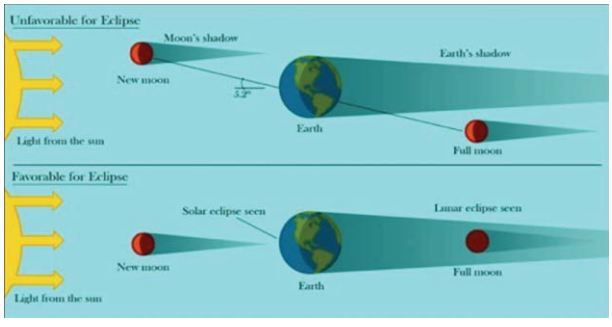

आसंधियों के सापेक्ष चन्द्रमा की स्थिति पर निर्भर करते हैं। सामान्यत: चन्द्रग्रहण के दो मुख्य प्रकार, पूर्ण (Umbra) एवं आंशिक (Penumbra) होते हैं। पूर्ण चन्द्रग्रहण तब होता है जब चन्द्रमा पृथ्वी की गहरी वाली छाया से होकर गुजरता है। ऐसी स्थिति में पृथ्वी चन्द्रमा पर पड़ने वाले सूर्य के प्रकाश को पूर्ण रूप से रोक देती है। इस प्रकार बनने वाला ग्रहण पूर्ण होता है। इसके अलावा पृथ्वी की छाया का कुछ भाग किनारों से प्रकाश टकराने के कारण अधिक गहरा नहीं होता, इस क्षेत्र की छाया से बनने वाला ग्रहण आंशिक कहलाता है। इस पर चर्चा के लिए शुरुआत में बोर्ड पर विभिन्न चित्र बनाकर इसकी प्रक्रिया से अवगत कराया जाता है एवं बाद में एक गतिविधि की जाती है। प्रकाश स्त्रोत एवं पृथ्वी (बल्ब, सफ़ेद गेंद एवं ग्लोब) को स्थिर रखकर चन्द्रमा द्वारा इसकी परिक्रमा करते हुए विभिन्न स्थितियाँ बनाने की कोशिश की जाती है ताकि विद्यार्थी ग्रहण के प्राकृतिक कारणों को समझ सकें।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया एवं चर्चा के दौरान महत्त्वपूर्ण समझ बनी : पहली यह अवलोकन कि ग्रहण केवल पूर्णिमा की स्थिति में ही सम्भव है। और दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि विद्यार्थी कलाओं की स्थिति को ग्रहण होने की स्थिति के साथ जोड़कर देख पा रहे थे।

अब एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह निकलकर आया कि यदि ग्रहण पूर्णिमा की स्थिति में ही हो सकता है तो यह हर पूर्णिमा को क्यों नहीं होता? इस प्रश्न से मुझे भी कुछ नया सीखने का अवसर मिला क्योंकि इसके उत्तर की खोज मुझे चन्द्रमा के पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाने के पथ पर लेकर गई जो कि सूर्य एवं पृथ्वी के तल से कुछ अलग था। यदि सूर्य व पृथ्वी को एक तल में मानें तो चन्द्रमा का तल, पृथ्वी के तल से 5.2^0 कोण पर था। जैसा कि हमने पहले देखा, चन्द्रग्रहण सूर्य, पृथ्वी एवं चन्द्रमा के एक तल में आ जाने के कारण होता है, पृथ्वी एवं चन्द्रमा के तल के बीच यही कोण सभी पूर्णिमा को ग्रहण न होने का कारण बनता है। उपरोक्त गतिविधि में मॉडल की सहायता से विभिन्न तलों में बनने वाली छाया के अवलोकन ने ग्रहण की समझ को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

देखा गया है कि समझ बनाने या विज्ञान के किसी सिद्धान्त को विद्यार्थियों के स्तरानुसार प्रस्तुत करने के प्रयास में सिद्धान्त को अत्यधिक सरलीकृत कर दिया जाता है और इस प्रयास में सिद्धान्त की सत्यता कहीं खो जाती है। जैसे ऋतुओं का निर्माण पृथ्वी की सूर्य से दूरी में परिवर्तन के कारण होता है। साथ ही कुछ प्रश्न विद्यार्थियों के अनुभवों पर आधारित होते हैं जो पुस्तक में दिए सिद्धान्तों से भी स्पष्ट नहीं हो पाते जैसे यदि पृथ्वी अपनी अक्ष पर एवं सूर्य के चारों ओर घूमती है तो यह हमें अनुभव क्यों नहीं होता? चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता है तो हर माह ग्रहण क्यों नहीं होता? पृथ्वी गोल है तो यह हमें समतल क्यों दिखाई देती है? इन विषयों पर वैज्ञानिक चर्चाएँ, गहरे बैठी ग़लत धारणाओं को तोड़ने में मदद कर सकती हैं।

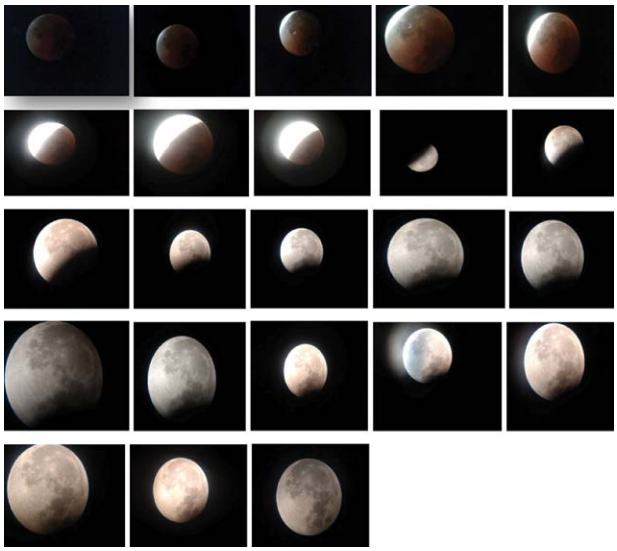

References

Module: The Moon (Azim Premji Foundation: Social Science Team)

Book: *Akash Darshan ka Anand* - Rakesh Popli (Vigyan Prasar)

Article – *Grahan Yatarth*: Narayan Chandra Rana

Article – *Rahu Ketu ki Khoj* -Rakesh Popoli

Article – *Akash ki Or*

Organising Report - *Chandra Grahan*: Azim Premji Vidyalaya

Images: Photos taken online and clicked by self in the schools

Links for observing the moon's motion:

https://www.school-for-champions.com/astronomy/moon_motion.htm#.WzRZCaczbIU

https://en.wikipedia.org/wiki/Tidal_locking#/media/File:Tidal_locking_of_the_Moon_with_the_Earth.gif

Universe Today Citation: Did we need the moon for life? (2015, November 23) retrieved 3 April 2019 from https://phys.org/news/2015-11-moon-life html (Hindi Translation)

आशीष शर्मा ने रसायनशास्त्र में स्नातकोत्तर एवं अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय से शिक्षा (करिकुलम एंड पैडागॉजी स्पेशलाईज़ेशन) में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की है। वे पिछले पाँच वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन टोंक, राजस्थान में कार्यरत हैं। वे खगोलविज्ञान में गहरी रुचि रखते हैं तथा विज्ञान की प्रकृति एवं विज्ञान में जागरूकता पर कार्यक्रम आयोजित करते हैं। उनसे *ashish.sharma@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

पुस्तकालय : प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा का महत्त्वपूर्ण केन्द्रबिन्दु

दिनेश पटेल

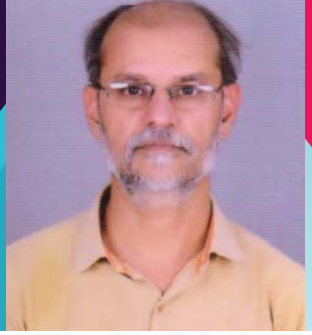

स्कूलों में बच्चों को सीखने के स्वतंत्र अवसर दिए जाएँ तो वे बेहतर सीखते हैं। वे अपने अनुभवों एवं तमाम तरह की रचनात्मक गतिविधियों के ज़रिए अपने आस-पास की दुनिया को जानने की प्रक्रिया का हिस्सा बनते हैं। वे हर उस चीज़ के साथ सम्पर्क स्थापित करना चाहते हैं जो उन्हें किसी भी रूप में आकर्षित करती हो। बशर्ते कि इस प्रक्रिया में किसी तरह का हस्तक्षेप शामिल न हो। चूँकि वे स्वभाव से जिज्ञासु प्रवृत्ति के होते हैं, वे हर उस चीज़ के बारे में जानना चाहते हैं जो उन्हें नई और अनोखी या अजीब लगती हो। कोई चीज़ *जैसी है वैसी क्यों है?* उसका रंग-रूप, आकार-प्रकार, उसका स्वभाव, उसकी प्रकृति आदि सब कुछ वे जल्दी जान लेना चाहते हैं। यह जिज्ञासा ही उन्हें सीखने/जानने की ओर अग्रसर करती है। समस्या तब होती है जब उनकी इस जिज्ञासु प्रवृत्ति को हम सायास या अनायास दरकिनार करने लगते हैं। इसका कारण कहीं यह तो नहीं कि बच्चों को क्या जानने की ज़रूरत है इस बारे में हमारे अपने पास स्पष्टता का अभाव है।

एक प्रोजेक्ट के तहत एकलव्य द्वारा मध्यप्रदेश के देवास, उज्जैन, होशंगाबाद, हरदा एवं बैतूल ज़िले के कुछ शासकीय स्कूलों में पुस्तकालय संचालित किए गए। एक क्रियाशील और रचनात्मक लाईब्रेरी चलाने का मेरा अपना अनुभव कहता है कि बच्चे इसके ज़रिए बहुत कुछ सीखते हैं। शायद यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि यहाँ बच्चे वह सब

राहुल अनिया, कक्षा छठवीं, बरखेड़ा, देवास

सीखते हैं जो एक अच्छा इन्सान बनने के लिए महत्त्वपूर्ण है। यह एक ऐसा अड्डा है जहाँ बच्चे एक-दूसरे की मदद करते हुए, एक-दूसरे से सीखते हैं। जहाँ अपनी मर्ज़ी से कुछ भी नया करने की उन्हें पूरी आज़ादी मिलती है। वे अपनी ज़िन्दगी की कहानियों को चर्चा में शामिल कर लेते हैं और किताबों में दर्ज कहानियों से प्रेरणा लेकर, अपने आस-पास के अनुभवों का भरपूर इस्तेमाल करते हुए नई-नई कहानियाँ गढ़ लेते हैं। फिर यह कहानियाँ तल्लीनता से भरपूर आनन्द के साथ एक-दूसरे को सुनाई जाती हैं। इन कहानियों को सुनने-सुनाने में जो मज़ा है उसकी आप कल्पना नहीं कर सकते हैं।

पुस्तकालय की यह एक ऐसी रोचक और मोहित करने वाली दुनिया होती है जहाँ बच्चे किताबों के साथ मज़बूत दोस्ती का रिश्ता बनाते हैं और पूरी आज़ादी से ज्ञान का सृजन करते हैं। यह प्रगाढ़ रिश्ता उन्हें पठन-पाठन, विभिन्न तरीक़ों की चित्रकारी, नाटक, माथापच्ची, खेल, क्राफ्ट एवं अन्य गतिविधियों में विभिन्न क्षमताओं को विकसित करने में अहम भूमिका निभाता है। इस पुस्तकालय प्रोजेक्ट में किताबों का लेन-देन एवं उनका रख-रखाव आदि तमाम तरह की गतिविधियाँ बच्चे ख़ुद करते हैं। हालाँकि इसमें बड़े वालंटियर एवं शिक्षक मददगार के रूप में शामिल रहते हैं।

स्कूल में बच्चों के साथ पुस्तकालय पर काम के दरमियान कई दिलचस्प चीज़ें सामने आईं। छात्र-छात्राओं ने दीवार अख़बार के ज़रिए की जाने वाली लेखन गतिविधि से कई दिलचस्प अनुभव प्राप्त किए। बच्चों द्वारा लिखित यह अनुभव-रचनाएँ उनके सृजनात्मक पहलू का एक जीवन्त उदाहरण हैं। बहुत ज़रूरी है कि भाषायी कौशल को बढ़ाने हेतु पढ़ने-लिखने की गतिविधियों के अधिक अवसर उपलब्ध कराए जाएँ ताकि बच्चे खुलकर अपनी बात कह सकें और अपनी जिज्ञासाओं को शान्त करने के रास्तों की तलाश की ओर अग्रसर हो पाएँ। हमारा मानना है कि शिक्षा का असली मक़सद होना चाहिए कि बच्चे शिक्षक की मदद से, कक्षा में और उससे बाहर अपने परिवेश से सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा बन सकें।

इस बात पर प्रमुखता से ज़ोर दिए जाने की ज़रूरत है कि शिक्षक बच्चों की ज्ञान–निर्माण प्रक्रिया को किस तरह से सक्रिय एवं रचनात्मक बना सकता है। जैसा कि एनसीएफ़ 2005 ने भी सुझाया है कि, "...स्कूल पुस्तकालय की संकल्पना एक

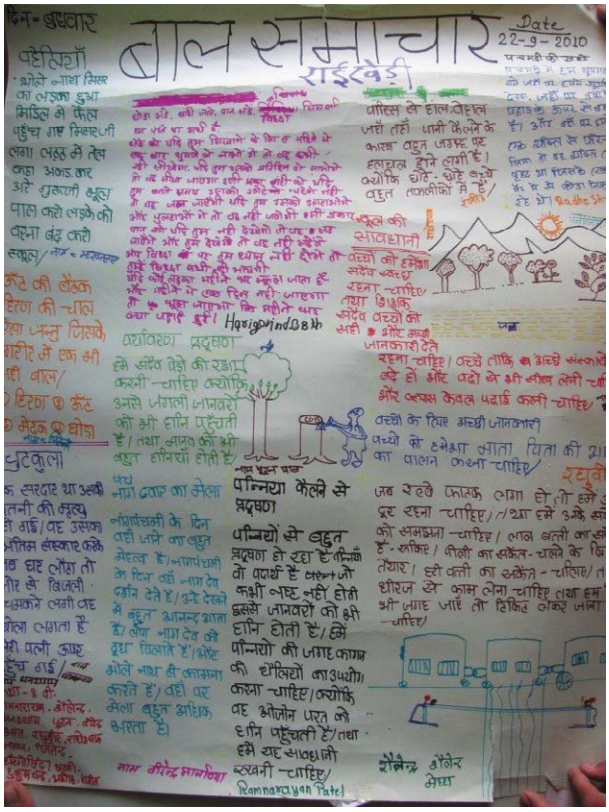

बच्चों द्वारा बनाया गया दीवार अख़बार

ऐसे बौद्धिक स्थल के रूप में की जानी चाहिए जहाँ शिक्षक, विद्यार्थी और निकटस्थ समुदाय के लोग ज्ञान के गहरे अर्थों और कल्पनाशीलता की तलाश में आएँ...।''

यह बात इसलिए भी मानीखेज़ है कि शिक्षा के क्षेत्र में देश-दुनिया में नए शोधों के ज़रिए भी यह बात ज़ोर देकर कही जा रही है कि बच्चे अपने ज्ञान के निर्माण में ख़ुद बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनके अपने अनुभवों को दरकिनार करके बहुत कुछ सिखाया नहीं जा सकता। ज़रूरी है कि बच्चों की समझ के हिसाब से, पढ़ाई के साथ उनका रिश्ता बन पाए ऐसी कोशिशें की जाएँ, जो कुछ हद तक पाठ्यक्रम से और बहुत हद तक आस-पास की दुनिया से पूरी होती हैं।

पुस्तकालय का प्रमुख मक़सद है बच्चों का उत्कृष्ट साहित्य से परिचय कराना और बच्चों में पढ़ने-लिखने के प्रति रुचि पैदा करना ताकि भाषा पर उनकी पकड़ अच्छी हो सके और वे स्वयं अपने ज्ञान के सृजन में भागीदार बन सकें। इसके लिए ज़रूरी है कि स्कूल का माहौल ऐसा हो जिसमें विभिन्न रचनात्मक गतिविधियों के ज़रिए उनमें पढ़ाई के प्रति रुझान उत्पन्न हो तथा नेतृत्व-क्षमता का विकास हो सके।

पुस्तकालय का एक अन्य उद्देश्य है, बच्चे दुनिया को जिस नज़र से देखना चाहते हैं उसमें उनकी मदद करना। इसमें प्रमुख रूप से पठन एवं लेखन सम्बन्धी गतिविधियों पर हमारा

अमित साहू, कक्षा सातवीं

शासकीय स्कूलों में पुस्तकालय-संचालन के *एकलव्य* के अनुभव से हमने सीखा कि बच्चे पुस्तकालय के ज़रिए कितना कुछ सीख सकते हैं। देखें बच्चों के विचार, उनके ही शब्दों में –

जसपाल, कक्षा 7, गयासुर गाँव : "एकलव्य की लाइब्रेरी की किताबों से ही मैंने पढ़ना सीखा। कॉपी (किताब) ले लेता और छुपाकर पढ़ता था कि कोई देख न ले। फिर धीरे-धीरे पढ़ना सीख गया। इससे पहले मेरे को कुछ भी पढ़ना नहीं आता था।"

कुछ ऐसी ही कहानी डापका, पिपरिया के स्कूल की है। गोविंद, रामकुमार, जसमन, राकेश एवं ब्रजमोहन। इन पाँचों बच्चों ने बताया, " पहले हम हिचक-हिचक के पढ़ते थे। पढ़ने में खूब देर लगती थी। हिज्जे कर-करके पढ़ना पड़ता था। फिर कुछ दिन के बाद धीरे-धीरे पढ़ना सीख गए। पुस्तकालय की किताबों की कहानियाँ पढ़ने से पढ़ने की आदत हो गई। फिर धीरे-धीरे सोचकर लिखना भी सीखे। चित्र बनाना भी किताबों से ही सीखा।"

रामकुमार, डबका : "जब लाइब्रेरी की किताबें नहीं मिलती थीं तो पढ़ने में शर्म आती थी। अब मैं कक्षा में खुले दम से किताब पढ़ लेता हूँ।" रामकुमार ने दो-ढाई महीने में पढ़ना सीख लिया था और अब वह स्कूल की पाठ्यपुस्तक भी ठीक से पढ़ लेता है। उसके शब्दों में - " अब तो सारी चीज़ समझ में आती है।"

जगदीश प्रजापति, बोरखेड़ा : " मुझे पहले कम पढ़ना आता था पर अब पुस्तकालय की किताबें धीरे-धीरे पढ़ने लगा हूँ। कहानियाँ ज़्यादा पढ़ीं और जानकारी वाली किताबें भी पढ़ीं।"

फोकस अधिक था ताकि बच्चे किताबों के इस्तेमाल से अपनी भाषायी क्षमता (लिखित व मौखिक) को समृद्ध बना पाएँ तथा स्कूलों में संचालित पुस्तकालय, उक्त तमाम रचनात्मक गतिविधियों के केन्द्र बन पाएँ।

इस तरह के उदाहरणों से लगता है कि बच्चे किताबों की दुनिया में धीरे-धीरे ही सही लेकिन हमेशा के लिए जुड़ने लगते हैं। जिस तरह से उन्होंने कई किताबों के नाम गिनाए इससे ज़ाहिर था कि वे उन्हें बेहद पसन्द आई होंगी। इन किताबों के नियमित इस्तेमाल से उनके पढ़ने की आदत में एक नियमितता आई है।

उनकी जिज्ञासा का पोषण हो रहा है इसका अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता था कि वे अपेक्षाकृत ज़्यादा ख़ुशमिजाज़ और उत्साह से लबरेज़ हैं। पहले से अधिक सहजता और अपनेपन से वे हमसे संवाद करते हैं। ऐसा नहीं लग रहा था कि वे किसी शिक्षक से बात कर रहे हैं बल्कि किसी दोस्त से बातचीत कर रहे हैं ऐसा महसूस हो रहा था। जैसा कि कुछ बच्चों ने कहा भी कि, ''सर आप हमारी बात सुनते हो और हम मस्ती करते हैं तो डाँटते भी नहीं हो और बहुत सारी चीज़ें सिखाते हो, तो हमको बहुत अच्छा लगता है।"

पुस्तकालय के इस्तेमाल का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि बच्चे लिखने की प्रक्रिया की तरफ़ धीरे-धीरे ही सही लेकिन आगे बढ़ने लगे हैं। वे यह समझ पाने की तरफ़ क़दम बढ़ा पाए कि कुछ लिखना व चित्र बनाना सचमुच काफ़ी दिलचस्प और रोचकता से भरपूर होता है। इन बच्चों में एक अलग ही उमंग

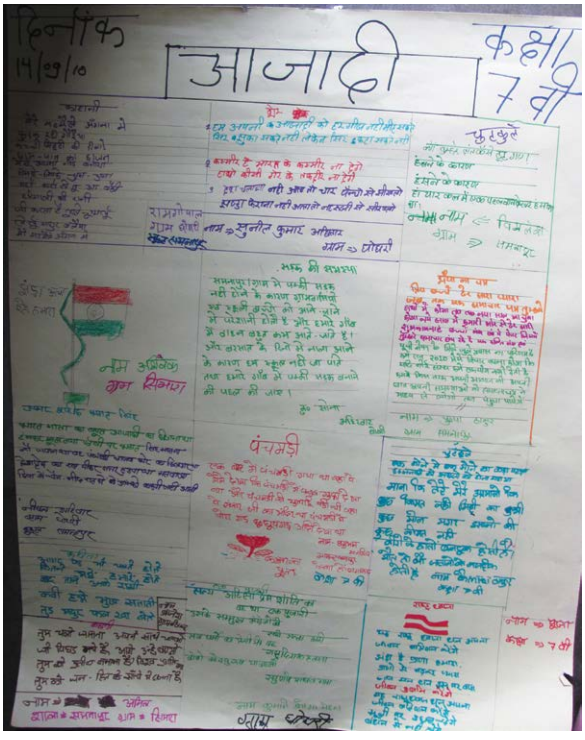

सोना अहिरवार, कक्षा छठवीं

और उत्साह है। वे कहीं अधिक आत्मविश्वासी भी हो गए हैं। इसकी प्रमुख वज़ह शायद यह रही कि जब हम बच्चों से उनके अनुभव लिखवाने की कोशिश कर रहे थे तब हमने उनके द्वारा रचित भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रारम्भिक रचनाओं को उसी रूप में स्वीकार किया। उनमें किसी तरह की मीनमेख नहीं निकाली बल्कि उनके रचे हुए की प्रशंसा ही की और उन्हें शाबासी भी दी। इसीलिए यह बच्चे हमेशा कुछ-न-कुछ रचनात्मक कर गुज़रने के उत्साह से लबरेज़ रहे। उन्हें जब भी और जो कुछ भी करने या रचने का मन होता तो वे उसे कर सकते थे। यदि मन नहीं करता तो न करने की भी पूरी आज़ादी थी। इस तरह के माहौल की गुंजाइश हमारी स्कूली व्यवस्था में बहुत कम ही देखने को मिलती है। लेकिन मेहनत और लगन से किए गए रचनात्मक प्रयासों से इन सरकारी विद्यालयों में भी काफ़ी कुछ रचनात्मक किए जाने की सम्भावनाओं के द्वार खुलते हैं। यही अनुभव मुझे इन सरकारी स्कूलों में काम करते समय मिला।

देवास के पोनासा गाँव के मिडिल स्कूल की शिक्षिका श्रीमती बबीता जायसवाल ने बताया कि, '' बच्चों ने आपकी किताबें खूब पढ़ी हैं। मैं जब भी अकेली रहती तो उन्हें होमवर्क करने के बाद पुस्तकालय की किताबें दे देती। इससे उनमें पढ़ने के प्रति काफ़ी रुचि बढ़ी है। कई बच्चों ने तो अधिकांश किताबें पढ़ ली हैं। इसलिए उनका कहना है कि उन्हें और किताबें चाहिए।''

गयासुर व बोलासा (देवास), सेमलिया नासर व मुंजाखेड़ी (उज्जैन), डबका (होशंगाबाद) तथा शाहपुर, सिलपटी एवं भुन्नास (बैतूल) के स्कूलों के बच्चों ने बताया कि उनके शिक्षक भी पुस्तकालय की किताबें पढ़ते हैं और घर भी ले जाते हैं। कुल 38 बच्चों में से 13 बच्चों ने बताया कि उनके घर में उनके भाई-बहन एवं परिवार के अन्य सदस्य भी यह किताबें पढ़ते हैं। उज्जैन क्षेत्र के तीनों गाँवों के बच्चों ने बताया कि हमारे शिक्षक ख़ुद किताबें पढ़कर उनसे खेल खिलाते हैं और चीज़ें भी बनवाते हैं।

इन बच्चों ने पूछने पर यह भी बताया कि, "किताबें नहीं मिलतीं तो जल्दी पढ़ना नहीं सीखते; खिलौने बनाने को नहीं मिलते; पढ़ना और लिखना नहीं आता; अच्छी कहानियाँ पढ़ने को नहीं मिलतीं; डायलॉग नहीं सीखते, पहेलियाँ नहीं सीख पाते; कहानियाँ सीखीं, पढ़ना व बोलना सीखा; मन से सीखा तो मज़ा आता है, सरलता से कहानी भी याद हो जाती है; जंगल में जाते-जाते कहानी का गाना भी बनाते हैं; नए-नए चित्र बनाना भी सीखा, खेल भी सीखे; अच्छे-बुरे की बात सिखाती है कहानी, ''गुड्डी'' कहानी से सीखा कि नदी-तालाब में नहाना नहीं चाहिए और कपड़े धोने का काम नहीं करना चाहिए। इससे पानी गन्दा होता है; दीवार अख़बार से जल्दी लिखने की हमारी आदत बन गई।"

एक अन्य बच्चे का अनुरोध था कि, "अच्छी किताबें और लेकर आना क्योंकि पापा कभी-कभी किताबें पढ़कर देखते हैं।" जसपाल ने कहा कि उसने अपने भाई को बताया कि साँप के डसने का भी इलाज होता है। इसकी किताब है स्कूल की लाइब्रेरी में, उसमें बताया है कि कैसे साँप के काटे का इलाज होता है, तो भाई बोला कि "मेरे को ला देना वो किताब मैं उसमें से पढ़ूँगा।"

बच्चों के इन अनुभवों में एक प्रकार की विविधता देखने को मिलती है। वे पुस्तकालय की विविधतापूर्ण किताबों से सक्रिय रूप से रिश्ता बना पाने की तरफ़ बढ़ रहे हैं। इससे उनके अपने शब्दकोश में काफ़ी इज़ाफ़ा हुआ है। यह सब उनकी बातचीत में स्पष्ट झलकता है। वे यह समझने लगे हैं कि अगर कोई उन्हें न भी सिखाए तो कई चीज़ें वे स्वयं भी किताबों की मदद से सीख सकते हैं। जब वे कोई चीज़ किताबों के ज़रिए सीखते हैं, तो उस समय उनकी ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं रहता। यह सब वे हमें तो बताते ही हैं, अपने स्कूल के शिक्षकों को भी उतने ही उत्साह से बताते हैं।

पढ़ने के लिए किताब कैसे पसन्द करते हो? इस सवाल के जवाब में अधिकांश बच्चों ने बताया कि वे पहले किताब का नाम देखते हैं, पसन्द नहीं आता तो थोड़े पन्ने पलटकर देखते हैं, अच्छी लगे तो पढ़ते हैं नहीं तो रख देते हैं। कई बार वे चित्र देखकर भी किताब पसन्द करते हैं। ज़ाहिर है कि किताब का कथानक, उसके चित्र, भाषा, डिज़ाइन, लेआउट, आदि की किताब-चयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। बच्चे रंगीन चित्रों वाली किताबें ज़्यादा चुनते हैं।

पुस्तकालय की नियमित गतिविधियों एवं बच्चों के साथ हमारे व्यवहार और कक्षा में शिक्षण के तौर-तरीक़ों को देखते हुए, कुछ शिक्षक साथियों के, बच्चों के साथ व्यवहार में सकारात्मक तब्दीली देखने में आई है। शिक्षक उन्हें स्कूल की सरकारी किताबें भी अब ख़ुद पढ़ने के लिए देने लगे हैं। ऐसा पहले नहीं था। वे पाठ्यपुस्तकों से इतर अन्य साहित्य को लेकर थोड़ी उत्सुकता दिखाने लगे हैं। जब वे पाठ्यपुस्तक का कोई पाठ बच्चों को पढ़ा रहे होते हैं, तो वे पढ़ाते समय बच्चों के अपने अनुभवों को भी इसमें शामिल कर रहे होते हैं। यानी बच्चों की सक्रिय सहभागिता से कक्षा-संचालन करना।

शिक्षक बाल-केन्द्रित शिक्षा के सिद्धान्त को समझने की तरफ़ भी बढ़ रहे हैं जिससे कक्षा को कहीं बेहतर ढंग से संचालित किया जा सकता है। इससे वे इस समझ की ओर बढ़ रहे होते हैं कि प्रत्येक बच्चे की समझ का स्तर और समझने के तरीक़ों में फ़र्क़ होता है। क्या यह विचारों में महत्त्वपूर्ण बदलाव का संकेत नहीं है? एनसीएफ़ 2005 भी इसका समर्थन *करता है- शिक्षक को एक मार्गदर्शक की भूमिका में होना चाहिए न कि ज्ञानदाता के रूप में, तभी वह बेहतर शिक्षक साबित हो सकता है।*

दिनेश पटेल वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन में, भाषा के रिसोर्स पर्सन के रूप में कार्यरत हैं। इससे पूर्व उन्होंने 30 वर्षों तक शिक्षा के क्षेत्र में *एकलव्य*, मध्यप्रदेश के साथ काम किया है। वे हिन्दी साहित्य, शिक्षा एवं साहित्य सम्बन्धी विषयों में लेख लिखने और रेखांकन में रुचि रखते हैं। उनसे *dineshpatel3@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

कक्षा के बाहर सीखना : असल जीवन के अनुभव

जिनेविव तलंग

बच्चे बुद्धिमान, होशियार और जिज्ञासु होते हैं, और बड़ी तेज़ी से कुछ भी सीख सकते हैं। अपनी किताबों से सीखने और ज्ञान हासिल करने के अलावा, कक्षा के बाहर सीखना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि किसी निर्धारित पाठ्यक्रम से। हम जानते ही हैं कि कक्षा के बाहर से सीखने का मतलब है अपने आस-पास के माहौल से सीखना, यानी असल जीवन के अनुभवों से। बच्चे अपने इर्द-गिर्द की चीज़ों से बहुत कुछ सीख सकते हैं, फिर भले ही वह घर के पिछवाड़े में फैला हुआ कीचड़ हो या नदी में बहता हुआ पानी। किसी शिक्षक से यह उम्मीद करना कि वह कक्षा के भीतर ही बच्चों को सब कुछ सिखा दे, बिलकुल भी व्यावहारिक बात नहीं है, इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि हम न सिर्फ़ अपने बच्चों को प्रकृति से सीखने की छूट दें बल्कि उसमें उनकी मदद भी करें।

दूसरी कक्षा में पढ़ने वाला, एक सात साल का बच्चा, पर्यावरण अध्ययन की अपनी पाठ्यपुस्तक से पानी के विभिन्न स्रोतों के बारे में सीख ही लेगा, लेकिन कभी-कभी बच्चों को किसी अवधारणा का महत्त्व और उसके बारे में जानने की ज़रूरत को समझाने के लिए, हमें सीखने-सिखाने के कुछ आसान-से तरीक़ों और विधियों को ढूँढ़ना पड़ता है। बच्चे प्रकृति के बारे में खोजबीन कर सकें, इसका एक तरीक़ा तो यह है कि उन्हें किसी बहती हुई नदी या समुद्र किनारे ले जाएँ जहाँ वे पानी के स्रोतों, पौधों, पत्थरों और मिट्टी का अवलोकन कर सकें। इस तरह से बच्चे और भी बहुत सारी महत्त्वपूर्ण बातें सीखेंगे : जैसे पानी को साफ़ कैसे रखना है, क्योंकि वह यहाँ पर सीखते हैं कि उसे गन्दा नहीं करना है और कैसे उसकी स्वच्छता को बचाए रखना है ताकि वह उसे पी सकें। यह किसी भी विषय

के महत्त्व को सिखाने का सबसे सरल और आसान तरीक़ा है। यह सारे अनुभव बच्चों के मन में देर तक बने रहेंगे उन बच्चों की तुलना में जिन्हें कभी ऐसी खोजबीन का मौक़ा ही नहीं मिला या जिनके पास ऐसा कोई प्रत्यक्ष अनुभव नहीं है। यहाँ वे सिर्फ़ उस विषय के बारे में ही नहीं सीखते, बल्कि उन्हें शारीरिक गतिविधियों का भी मौक़ा मिलता है जो ग्रॉस एवं फाइन मोटर स्किल्स (Gross & Fine Motor Skills) के विकास के लिए बहुत ज़रूरी हैं।

मोटर स्किल्स के विकास को समझने के लिए हम तैराकी की मिसाल ले सकते हैं। हम सभी चाहते हैं कि बच्चे पानी में किसी तरह की दुर्घटना के शिकार न हों, इसलिए हम अपने विद्यार्थियों को घर पर और बाहर सुरक्षा का ध्यान रखने के बारे में समझाते रहते हैं, साथ ही किसी आकस्मिक दुर्घटना से निपटने के अभ्यास और जागरूकता से जुड़े कई तरह के प्रोग्राम हमारे स्कूलों में चलते रहते हैं। विज़ुअल या दृश्य माध्यमों के ज़रिए सिखाए जाने वाले आपदा से बचाव के अभ्यासों पर विचार करिए, क्या सिर्फ़ समझा देने से या पीपीटी देख लेने भर से बच्चा उन्हें कर पाने में सक्षम हो जाता है? यह एकदम असम्भव है, इसलिए बच्चे को बाहर नदी तक लेकर जाना और खोजबीन में उसकी मदद करना उससे कहीं बेहतर है, क्योंकि वहाँ वह तेज़ी से सीखेगा और उसे मज़ा भी आएगा।

उच्च कक्षाओं में विज्ञान सीखना और भी ज़्यादा मुश्किल हो जाता है, क्योंकि अवधारणाओं को समझने के लिए कहीं अधिक ध्यान केन्द्रित करने की ज़रूरत पड़ती है, कुछ बच्चों

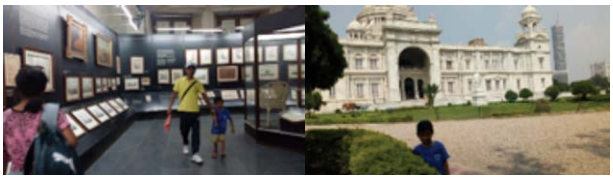

को तो ख़ासतौर पर। मुझे अपने बारे में याद है कि कैसे प्रयोगों और असल जीवन के अनुभवों के बिना विज्ञान को पढ़ने और समझने में ढेरों समस्याओं का सामना करना पड़ा। कुछ विषयों को तो कक्षा के बाहर कहीं ज़्यादा बेहतर तरीक़े से सीखा जा सकता है, छोटी-छोटी यात्राओं के ज़रिए, संग्रहालयों और वैज्ञानिक संस्थाओं से, कारखानों और प्रदर्शनियों से, खेतीबाड़ी करते हुए, तरह-तरह के प्रोजेक्ट और प्रयोगों से। एक बात जो मेरी नज़र में बहुत महत्त्वपूर्ण है वह है बच्चों की मदद के मामले में अभिभावकों को शामिल करना।

अपने बच्चों के अध्यापकों से मुझे जो सबसे ज़बरदस्त अनुभव मिला वह यह कि उन्होंने हमें याद दिलाया कि बच्चे की सीखने की प्रक्रिया में माता-पिता को शामिल करना कितना महत्त्वपूर्ण है। बच्चे और माता-पिता दोनों साथ-साथ ही सीखते हैं क्योंकि इससे भावनात्मक, मानसिक और शारीरिक विकास जुड़ा हुआ है। जब बच्चे और माता-पिता मिलकर काम करेंगे तो बच्चा समूह में काम करना सीखेगा, और उसके सामाजिक व्यवहार में सुधार और निखार आएगा,

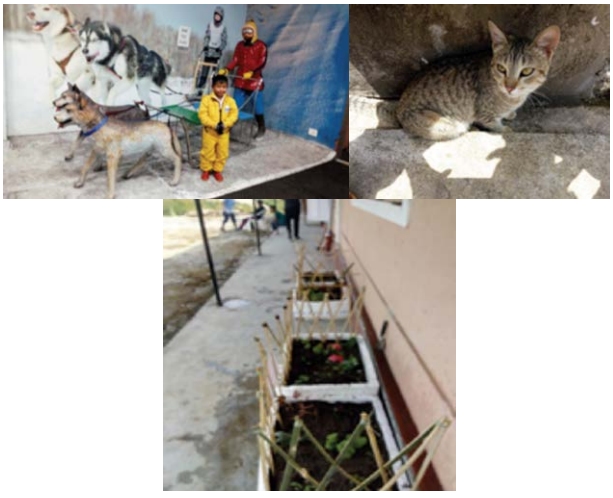

वह सीखेगा कि नई परिस्थितियों में आसानी से कैसे ढलना है। साथ ही वह दूसरों के साथ सहयोग, प्रेम और भरोसा करना सीखेगा। मारिया मोंटेसरी के मुताबिक जब बच्चे और माता-पिता मिलकर काम करते हैं तो बच्चे की प्रेम और देखभाल की ज़रूरत पूरी हो जाती है और इसे पूरा करने का एक तरीक़ा कक्षा के बाहर सीखना भी है। बच्चे को उसमें जो मज़ा आता है उससे उसे बड़ी तसल्ली मिलती है, भले ही वह काम सिर्फ़ फ़ोटो या तस्वीरें चिपकाने का हो या फिर आर्ट एंड क्राफ्ट सम्बन्धी गतिविधियाँ हों।

नेशनल कौंसिल ऑफ टीचर एजुकेशन (एनसीटीई) शिक्षकों के मानवीय होने की बात पर बहुत ज़ोर देती है। लेकिन वृहद पाठ्यक्रम और काम की व्यस्तता की वजह से कई बार शिक्षकों को इस पहलू को नज़रअन्दाज़ करना पड़ता है। कोर्स पूरा करने के लिए सभी शिक्षकों को तेज़ी से पढ़ाना पड़ता है। तो फिर कक्षा के बाहर भी बच्चों को सीखने में मदद करने का समय कहाँ से मिलेगा, जबकि पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या ने तो पहले ही उसे साल भर के लिए कक्षा के भीतर उलझा रखा है? इसलिए पाठ्यक्रम को इस तरह से तैयार किए जाने की ज़रूरत है जिसमें बच्चों को महीने में कम-से-कम एक बार हर टॉपिक या विषय में कक्षा से बाहर जाकर सीखने का मौक़ा मिले।

कक्षा से बाहर सीखने की बात सिर्फ़ छोटे बच्चों के लिए ही नहीं है, बल्कि यह उच्च कक्षाओं और यहाँ तक कि कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए भी उतनी ही सही है। इससे छोटे बच्चों

को बढ़ने और विकसित होने में तो मदद मिलती ही है लेकिन बड़ी उम्र के विद्यार्थियों को इससे जो बल मिलता है उससे भी इनकार नहीं किया जा सकता। मिसाल के लिए, जब हम बड़ी कक्षा के विद्यार्थियों को कोई असाइनमेंट देते हैं तो इस बात का ख़्याल रखना बेहद महत्त्वपूर्ण है कि वे अपनी बात को तथ्यों के आधार पर लिखें और मौलिक रूप से उस पर सोच-विचार करें। अक्सर हम देखते हैं कि विद्यार्थी उन्हें किसी किताब या फिर किसी दूसरे की कॉपी से बस ज्यों-का-त्यों उतार लाते हैं। ऐसी चीज़ें शायद इसलिए होती हैं क्योंकि एक शिक्षक के नाते हम विद्यार्थियों को यह नहीं बताते कि वे अपने ख़ुद के अनुभवों के बारे में लिखें। हालाँकि यह काम थोड़ा मुश्किल है, लेकिन जो हम कर सकते हैं वह यही है कि उन्हें फील्ड-ट्रिप्स पर ले जाएँ, भेंट-वार्ताएँ करवाएँ, तरह-तरह के प्रयोग करवाएँ और सेमिनार और कॉन्फ्रेन्स में ले जाएँ।

मिसाल के लिए जब हम बच्चों को संविधान पर कोई असाइनमेंट देते हैं तो नतीजा यही होता कि ज़्यादातर विद्यार्थी किताबों से उतारकर ले आते हैं। लेकिन अगर कोई शिक्षक कक्षा के बाहर के अनुभवों के ज़रिए उन्हें इसके बारे में समझने में उनकी मदद करे, जैसे कि किसी अदालत में या संसद में ले जाकर, विधायकों, अधिकारियों के साथ भेंट-वार्ता करवाकर, चुनाव के दौरान लगने वाली डयूटी में उन्हें शामिल करके जहाँ पर वे बुज़ुर्गों या विशेष आवश्यकता वाले लोगों की मदद कर सकते हैं, या पोस्टर वगैरह चिपकाने में भी उनकी मदद ली जा सकती है, तो फिर उनके पास लिखने के लिए अपने कुछ मौलिक अनुभव होंगे। पंचायत या स्थानीय समुदाय से जुड़े हुए कामों में उन्हें शामिल करना, राष्ट्रीय दिवसों के बारे में बातचीत करना और कैसे यह सब हमारे संविधान से जुड़ा हुआ है इस पर चर्चा कर हम उनकी मदद कर सकते हैं। व्यावहारिक शिक्षा, कक्षा में दिए जाने वाले लेक्चरों से कहीं बेहतर है, जिन्हें याद रखना ज़्यादा मुश्किल होता है।

इसकी एक और मिसाल है समावेशी शिक्षा, विकलांगता और विशेष शिक्षा का क्षेत्र। सेवा-पूर्व प्रशिक्षुओं को जब प्रशिक्षण पर भेजा जाता है, जिनमें सभी वयस्क होते हैं, कुछ महत्त्वपूर्ण मामलों के बारे में उन्हें कोई जानकारी ही नहीं होती क्योंकि उनके पास कोई व्यावहारिक अनुभव नहीं होता। तो सीखने में उनकी मदद इन्हीं तरीक़ों से की जा सकती है कि आप उन्हें कक्षा से बाहर ले जाएँ, अलग-अलग तरह के विशेष और समावेशी स्कूलों और संस्थाओं का भ्रमण कराएँ, और विशेष आवश्यकता वाले बच्चों से मिलवाएँ। इस तरह कक्षा के बाहर सीखना वयस्क शिक्षार्थियों के लिए और यहाँ तक कि शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि कुछ भी पढ़ाने से पहले हमें उसका सहज अनुभव होना चाहिए, ज़ाहिर है कि इससे सीखने और सिखाने में मज़ा भी आने लगेगा।

जो कुछ भी मैंने लिखा है वह सब मेरे अपने अनुभवों पर आधारित है : पहले एक विद्यार्थी के तौर पर, फिर एक माँ के रूप में, फिर एक शिक्षिका और अब एक शिक्षक-प्रशिक्षक के तौर पर मेरे अनुभव। कोई भी दो बच्चे, भले ही वे जुड़वाँ क्यों न हों, एक जैसे नहीं होते। सीखने का सबका अपना-अपना तरीक़ा होता है, लेकिन एक चीज़ जो समान है वह यह कि हम सब एक ही वातावरण में रहते हैं, उसी हवा में साँस लेते हैं, यही वजह है कि हम सब कक्षा के बाहर कुदरती माहौल में ज़्यादा बेहतर तरीक़े से सीख पाते हैं। किसी कार्य को करते हुए सीखना, कुछ देखकर सीखना और वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में रहते हुए सीखना ही सबसे बेहतरीन होता है क्योंकि इससे बच्चे को ख़ुशी मिलती है और उसका विकास होता है।

जिनेविव तलंग ने शिक्षा में मास्टर डिग्री हासिल की है, साथ ही स्पेशल एजुकेशन में बीएड हैं। वे डायट (DIET), सोहरा, मेघालय में प्रवक्ता के पद पर कार्यरत हैं। उनसे *genevievedtalang0921@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : बलराम बोधि **पुनरीक्षण** तथा **कॉपी एडीटिंग :** स्वाति भदौरिया

बाल-मेला

कुमार अमलेन्दु

झारखण्ड राज्य TRI-PRIDE प्रोजेक्ट के तहत, बच्चों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए, स्थानीय तंत्र को मज़बूत करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास कर रहा है। इसके तहत सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से बच्चों की शिक्षा में निरन्तरता एवं गुणवत्ता सुनिश्चित करने की तमाम कोशिशें की जा रही हैं।

विद्या भवन सोसाइटी अपने विभिन्न कामों के ज़रिए इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है। इनमें, अभिभावक और बच्चों के बीच बातचीत बढ़ाना, अभिभावक-स्कूल के बीच एक मज़बूत जुड़ाव के लिए प्रयत्न करना, स्कूलों के साथ स्थानीय समुदायों की सहभागिता को मज़बूत करने और शिक्षकों के बीच जाकर उन्हें हर बच्चे को शिक्षा देने के लिए प्रेरित करने जैसे काम शामिल हैं। हर बच्चे को शिक्षा मिले, इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए विद्या भवन टीम ने जनवरी 2017 से झारखण्ड के गोला, रामगढ़ समेत कुछ अन्य इलाकों में काम करना शुरू किया।

इसके लिए सबसे पहले शैक्षिक मुद्दों पर होने वाली बातचीत को व्यक्तिगत से सामूहिक बनाने की कोशिश की गई। विद्या भवन के सहयोगी संगठन प्रदान (PRADAN-Professional Assistance for Development Action) के अनुभव से हमने भी महसूस किया कि शैक्षिक मुद्दों को उठाने और सामूहिक रूप से उनका समाधान खोजने के लिए ग्राम संगठन (VO) एक सही मंच है। इसके तहत सबसे पहले यहाँ चेंज वेक्टर (CV) या शिक्षा बदलाव वेक्टर (ECV) की आवश्यकता महसूस की गई और उन्हें समुदाय तथा स्कूल के बीच सामंजस्य बिठाने वाली महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में देखा गया है। ग्राम संगठन के सदस्यों द्वारा प्रदान संस्था की मदद से शिक्षा के बदलाव वेक्टर (ECV) का चयन किया गया है। वेक्टर को लोकप्रिय शब्दों में दीदी के सम्बोधन से बुलाया जाता है।

शिक्षा की बदलाव दीदी (ECV) को प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने हेतु बुनियादी प्रशिक्षण, सॉफ्ट स्किल ट्रेनिंग और विद्या भवन की कार्य-रणनीति के बारे में उन्मुखीकरण के तीन दौरों से गुज़रना होता है। हमारी टीम के सदस्य उन्हें कार्य-क्षेत्र में पूर्ण सहायता प्रदान करते हैं। साथ ही, सीखने और अनुभव साझा करने के लिए प्रखण्ड स्तर पर, मासिक/द्विमासिक बैठकें आयोजित करते हैं। विभिन्न रणनीतियों के तहत की जाने वाली अनेक गतिविधियों में *बदलाव दीदियों* की अहम भूमिका होती है। वे अपने साथ समुदाय की अन्य महिलाओं को भी इन गतिविधियों से जोड़ती हैं।

शुरुआती दौर में जब हम क्षेत्र और विद्यालय सम्बन्धी बुनियादी जानकारी जुटा रहे थे तो अनुभव हुआ कि विद्यालय और समुदाय के बीच एक दूरी बनी हुई है। अभिभावक केवल सरकारी योजनाओं के तहत वितरित होने वाली सामग्री मिलने के दिनों में ही विद्यालयों में जाते थे। समुदाय के सदस्यों में इन दिनों के अलावा विद्यालय जाने-आने में जो झिझक पैठी हुई थी, उसे तोड़ना बहुत ज़रूरी था, तभी हम प्राथमिक शिक्षा में समुदाय की भागीदारी को सुनिश्चित करने की ओर क़दम बढ़ा सकते थे। हमारे द्वारा तय की गई विभिन्न गतिविधियों में "बाल-मेला"एक ऐसी गतिविधि है, जो एक ठोस सन्दर्भ के माध्यम से समुदाय, स्कूल और बच्चों को जोड़ने का महत्त्वपूर्ण मंच उपलब्ध कराती है। यह कक्षा से बाहर बच्चों के लिए सीखने का एक शानदार अनुभव है, क्योंकि यह बच्चों में रुचि और समझ को प्रोत्साहित करता है। बाल-मेले के दौरान स्मृति, सटीकता, एकाग्रता, रचनात्मकता और कल्पना पर आधारित विभिन्न खेलों का आयोजन किया जाता है। इनमें ड्राइंग और पेंटिंग, ईंट-बाल्टी खेल, गिलास-सिक्का खेल, इलेक्ट्रिक सर्किट सेल का खेल, किताबों का संसार, अनुमान/यादों के झरोखे से, पत्ती-धागा डिज़ाइन, रिंग गेम, पपेट शो और मैदान में खेले जाने वाले खेल जैसी गतिविधियाँ शामिल रहती हैं।

बाल-मेले के आयोजन की शुरुआत संग्रामपुर गाँव के विद्यालय में फ़रवरी 2017 में की गई। इसके लिए पहले विद्या भवन के साथियों द्वारा ग्राम-संगठन की बैठक में बाल-मेले की पूरी योजना और अपने उद्देश्यों को साझा किया गया। चूँकि उस समय *बदलाव दीदी* का चयन नहीं हुआ था, ग्राम-संगठन के सदस्यों ने इसके आयोजन की ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर ली। यह तय हुआ कि ग्राम-संगठन के सदस्यों का एक समूह विद्या भवन के साथियों के साथ विद्यालय जाकर अध्यापकों से बच्चों के लिए बाल-मेला आयोजित करने के लिए अनुमति लेगा। बाल-मेले में उपयोग में आने वाली, गाँव स्तर पर उपलब्ध होने वाली सामग्री कौन–कौन लाएगा, जैसे कि दरी, चादर, बाल्टी, ग्लास इत्यादि के लिए भी ज़िम्मेदारी

तय की गई। इसके अलावा अन्य ज़रूरी सामान विद्या भवन द्वारा उपलब्ध कराया जाना तय किया गया।

समुदाय के लोगों के प्रयास से बाल मेले को आयोजित करने के सम्बन्ध में विद्यालय प्रबन्धन समिति (SMC) की बैठक बुलाई गई। बैठक में समिति के सदस्य, विद्यालय के शिक्षक, विद्या भवन के साथी एवं समुदाय के सदस्यों ने भाग लिया जहाँ विद्या भवन के साथियों द्वारा बाल-मेले के उदेश्य और आयोजन पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई। हालाँकि विद्यालय प्रबन्धन ने इस कार्य के लिए मना नहीं किया लेकिन मेले की व्यवस्था, उसमें होने वाली गतिविधियों, खाने-पीने एवं प्रतिभागियों आदि सम्बन्धी कई सवाल रखे गए।

बैठक के बाद सबको यह बात समझ आ गई कि यह मेला बच्चों को केन्द्र में रखकर और बच्चों के लिए आयोजित किया जा रहा है और यह भी कि गाँव में आयोजित होने वाले अन्य मेलों से यह बिल्कुल अलग है। इसमें समुदाय की भागीदारी से बच्चों के सीखने-सिखाने से जुड़ी हुई अनेक गतिविधियाँ आयोजित होने वाली हैं। बैठक में बाल-मेले का दिन (3 फ़रवरी 2017) और समय (सुबह 10.00 बजे से दोपहर 1 बजे तक) तय हो गया। पास के दो गाँवों (बीसा तथा मुरुडीह) के प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों को भी इस मेले में भाग लेने की अनुमति प्राप्त हो गई।

बाल मेले की शुरुआत पूरे उत्साह के साथ की गई। विद्यार्थियों, अभिभावकों और शिक्षकों ने बड़ी गर्मजोशी के साथ सभी गतिविधियों में भाग लिया। आमतौर पर शिक्षक, अभिभावक और बच्चे एक साथ खेलते नज़र नहीं आते, मगर यहाँ ऐसा हुआ। सभी गतिविधियों में समुदाय के पुरुष और महिलाएँ उपस्थित थीं, वे गतिविधियों को पूरी दिलचस्पी के साथ देख रहे थे और उनमें हिस्सेदारी भी कर रहे थे। यह मेला ख़ासतौर पर प्राथमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए आयोजित किया गया था, लेकिन लोग इतने ज़्यादा उत्साहित थे कि हम विभिन्न गतिविधियों में भाग लेने के लिए उच्च-प्राथमिक विद्यार्थियों को भी नहीं रोक पाए क्योंकि वे भी बहुत ज़्यादा उत्सुक थे।

जैसा कि पहले भी ज़िक्र किया गया कि इस मेले में पास के दो गाँवों के प्राथमिक कक्षाओं के बच्चे भी अपने शिक्षकों के साथ शामिल हुए। कुल तीन स्कूलों के लगभग 300 बच्चों और 15 शिक्षकों समेत लगभग 100 अभिभावकों, उदयपुर से आए विद्या भवन के 4 सदस्यों, सहयोगी संस्था प्रदान के तीन सदस्यों और विद्या भवन टीम के 3 स्थानीय सदस्यों ने मेले में पूरे उत्साह के साथ भागीदारी की। बाल-मेले के अन्त में विद्या भवन, उदयपुर और स्थानीय टीम के सदस्यों द्वारा एक पपेट शो का प्रदर्शन भी किया गया।

विद्यार्थियों ने इस मस्ती भरे दिन का पूरा आनन्द लिया। यह शिक्षकों और इसमें भाग लेने आए समुदाय के लोगों के बीच जागरूकता पैदा करने का एक बड़ा और ख़ास अवसर साबित हुआ। इसका तात्कालिक प्रभाव हमें बच्चों की बढ़ती हुई उपस्थिति के रूप में दिखा। नए सत्र में चार-पाँच अभिभावकों द्वारा अपने बच्चों का नाम निजी विद्यालयों से कटाकर गाँव के सरकारी विद्यालय में कराया गया। संग्रामपुर गाँव में इस वर्ष समुदाय के लोगों, बच्चों और शिक्षकों ने नामांकन अभियान में भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

बाल-मेले का आयोजन अब नियमित रूप से किया जा रहा है। शुरू के कुछ महीनों में बच्चों और विद्यालय की विशेष माँग पर हम बाल-मेले के आयोजन में मुख्य भूमिका में रहे।

इस बीच *बदलाव दीदी* का चयन हुआ और विद्या भवन द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में काम करने के लिए उनका उन्मुखीकरण किया गया। शुरू में इन्हें ग्राम-संगठन में दो बिन्दुओं पर चर्चा करनी थी : अभिभावक बच्चों को नियमित रूप से स्कूल भेजें और शाम को घर पर बच्चों को पढ़ने के लिए ज़रूर बिठाएँ। *दीदियाँ* एवं विद्या भवन के साथी विद्यालय जाकर अनियमित बच्चों की सूची भी बनाया करते थे।

हाल के दिनों में बाल-मेला आयोजित करने का अनुभव बहुत अच्छा रहा और इसके आयोजन में *दीदी* का भी महत्त्वपूर्ण सहयोग मिलना शुरू हो गया क्योंकि नियमित बातचीत से शिक्षकों में *दीदी* के प्रति विश्वास बढ़ा। विद्यालय में की जाने वाली गतिविधियों से *दीदी* को सीधे तौर पर जोड़ने के लिए विद्या भवन ने बाल-मेला पर *दीदियों* के उन्मुखीकरण का कार्यक्रम बनाया। उन्मुखीकरण के बाद वे अपने-अपने गाँव के सरकारी विद्यालय में इसका आयोजन सफलतापूर्वक करने लगी हैं। अब विद्या भवन की भूमिका, बाल-मेला के लिए संसाधनों की व्यवस्था तक सीमित हो गई है।

बाल-मेलों जैसी गतिविधियों के माध्यम से बच्चों का स्कूल के प्रति बढ़ता लगाव उनकी उपस्थिति में बढ़ोत्तरी के रूप में देखा जा सकता है। *दीदियों* के सतत प्रयास से विद्यालय में होने वाली मासिक बैठकों में लोगों की उपस्थिति लगभग 50-60 प्रतिशत तक पहुँच गई है, जो कि पहले नगण्य हुआ करती थी। विद्या भवन, प्रथम बैच की *दीदियों* को शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु, तीन ओरीएन्टेशन प्रोग्राम कर चुका है। विद्या भवन द्वारा जिन 12 गाँवों में यह प्रोजेक्ट किया जा रहा वहाँ *दीदियाँ* अपने-अपने गाँव के विद्यालयों में बच्चों को कक्षा-कक्ष से बाहर सीखने-सिखाने की गतिविधियों का संचालन करने लगी हैं। *दीदियाँ* सप्ताह में दो या तीन दिन विद्यालय आती हैं। वे पुस्तकालय की किताबें

बच्चों को उपलब्ध कराती हैं, बच्चों के साथ कविता-पाठ व कहानी-पाठ आयोजित करती हैं तथा सप्ताह के अन्त में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रम में सहयोग कर रही हैं।

पाठ्यपुस्तक की पढ़ाई के अलावा विद्यालय में की जा रही विभिन्न गतिविधियों के प्रति बच्चों की बढ़ती रुचि को देखते हुए विद्या भवन आगे की योजना पर भी काम कर रहा है। ऐसी योजना पर काम शुरू हो चुका है, जिससे हम प्रखण्ड के अन्य विद्यालयों में बाल-मेला जैसी गतिविधि जल्द-से-जल्द आयोजित कर सकें। इस महत्त्वपूर्ण कार्य में हमारी मुख्य सहयोगी शिक्षा के क्षेत्र में स्वेच्छा से काम कर रहीं *दीदियाँ* एवं ग्राम-संगठन की दीदियाँ हैं। विद्या भवन ने अब ग्राम-संगठन के कार्यालयों में बाल-मेले से जुड़ी बुनियादी चीज़ों को उपलब्ध कराने का निर्णय लिया है, जिससे कि समुदाय के लोग बिना किसी का इन्तज़ार किए, अपनी सुविधानुसार 4-6 माह में एक बार बच्चों के लिए बाल-मेले जैसे आयोजन कर पाएँगे।

इस अनुभव को आगे ले जाते हुए हम ग्राम-संगठन के ऑफिस को विद्यालय/कक्षा से बाहर एक गतिविधि केन्द्र के तौर पर देख रहे हैं। समुदाय के लोगों के साथ सहमति भी बनी है। ग्राम-संगठन के ऑफिस में विद्या भवन, बच्चों से जुड़ी कहानी की किताबें, बाल-मेले की सामग्री, गिनती सीखने के लिए मोती की माला, *दीदियों* के पढ़ने के लिए शिक्षा से जुड़ी पठन-सामग्री इत्यादि उपलब्ध कराने का काम कर रहा है। शाम के समय प्राथमिक कक्षाओं के बच्चे कहीं और खेलने के बजाय ग्राम-संगठन के कार्यालय के पास *दीदियों* की देख-रेख में, खेल-कूद तथा अन्य सीखने-सिखाने से जुड़ी गतिविधि भी कर सकेंगे। हमारा लक्ष्य है ग्राम-संगठन के ऑफिस को गतिविधि-केन्द्र के तौर पर विकसित करना तथा हर गाँव में कुछ महिलाओं को *बदलाव दीदी* के तौर पर तैयार करना ताकि शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे काम की निरन्तरता बनी रहे, बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिले तथा समुदाय के लोगों में स्कूल के प्रति स्वामित्व की भावना जाग सके।

कुमार अमलेन्दु SSA, SCERT, DIET आदि सरकारी शिक्षा विभागों के साथ कार्य करने का 20 वर्ष का अनुभव रखते हैं। वर्तमान में वे विद्या भवन सोसाइटी के TRI-PRIDE प्रोजेक्ट (झारखण्ड) के साथ कार्य के माध्यम से समावेशी, समतापूर्ण एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रयासरत हैं। उनसे *kr.amalendu@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

सुबह की सभा : सीखने का मंच

मनोज कुमार त्रिपाठी और शिव कुमार

सीखना, निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह कहीं भी बल्कि यूँ कहें कि हर जगह ही चलती रहती है, कभी जाने में तो कभी अनजाने ही। जब हम सचेत रूप से कुछ सीखते हैं तो वह हमारे ज्ञान का हिस्सा बन जाता है, हमारी समझ को बढ़ाता है, हमें हुनरमन्द बनाता है, और फिर पूर्व-अनुभव और ज्ञान के आधार पर हम नए अनुभव हासिल कर सकते हैं और अपने ज्ञान को और आगे बढ़ा सकते हैं। सीखना किसी भी तरह से हो सकता है। हो सकता है कि इसके लिए हमें कोशिशें करनी पड़ें या फिर यह परिस्थितिजन्य या सन्दर्भ आधारित भी हो सकता है, किसी की मदद या बिना मदद के भी हो सकता है और दूसरे कई तरीक़ों से भी। दूसरी तरफ़ हम बहुत कुछ ऐसा भी सीखते हैं जिनका भले ही तुरन्त कोई असर दिखाई न दे लेकिन समय के साथ वह महत्त्वपूर्ण हो जाता है। मतलब यह कि सीखना हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। इसकी कोई सीमा या अन्त नहीं है।

हमारी स्कूली शिक्षा प्रणाली में सीखना और उससे जुड़ी प्रक्रियाएँ बेहद महत्त्वपूर्ण हैं। सारी कोशिशें विद्यार्थियों के सीखने के प्रति ही समर्पित होती हैं- चाहे वह कक्षा का कमरा हो, पाठ्यपुस्तकें, साज़ो-सामान से भरी प्रयोगशालाएँ या फिर

पुस्तकालय, सबका मक़सद वही है। लेकिन ऐसे बहुत से अनौपचारिक तरीक़े भी प्रचलन में हैं, जो कि सीखने में विशेष योगदान देते हैं और अधिगम प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण और अभिन्न अंग हैं। यह एक सच्चाई है कि सीखने का एक बहुत बड़ा हिस्सा कक्षा के बाहर ही घटित होता है, जिसका कक्षा के अन्दर की गतिविधियों पर और सीखने की पूरी प्रक्रिया पर भी महत्त्वपूर्ण असर होता है।

कक्षा के भीतर जो भी सीखा जाता है उसे कक्षा के बाहर के अनुभवों और अपेक्षाओं से जोड़ा जाना चाहिए और आस-पास के माहौल और परिवेश में उसकी एक प्रासंगिकता होनी चाहिए। तभी वास्तविक सीखना हो पाएगा जो आगे सीखने का आधार बन सकता है और सीखने के नवीन अवसर पैदा कर सकता है।

हमारे स्कूलों में कक्षा के बाहर भी बच्चों के सीखने के लिए अनेक मौक़े होते हैं। हमारे अनुभव भी यही बताते हैं कि बहुत कुछ ऐसा है जिसे बच्चे कक्षा के बाहर ही सीखते हैं और वह भी ख़ुशी-ख़ुशी, जिज्ञासा और उत्साह से। ऐसे मौकों पर और इन सारी अलग-अलग प्रक्रियाओं में जो भी वे सीखते हैं, उसका उनके वर्तमान और भविष्य के अधिगम पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

स्कूल की दिनचर्या की शुरुआत में ऐसी ही गतिविधियों में 'चेतना-सत्र' या 'सुबह की सभा' भी शामिल है। आपस में मिलने-जुलने की यह मज़ेदार, दिलचस्प, जानकारीपूर्ण और जीवन्त सभा कक्षा के बाहर ही होती है। किसी ने यह बहुत ख़ूब कहा है, "अच्छी शुरुआत का मतलब है आधा काम हो जाना" चेतना-सत्र पर, जो एक तरह से स्कूली कामकाज की शुरूआत है, यह बात पूरी तरह से खरी उतरती है। चेतना-सत्र सिर्फ़ कोई रिवायत भर नहीं है, जिसमें बस रस्मी प्रार्थनाएँ वगैरह ही होती हों। अब यह समावेशी और संवादात्मक गतिविधियों का एक सक्रिय मंच है। यहाँ पर बच्चों को निजी तौर पर व सामूहिक रूप से सीखने के मौक़े मिलते हैं और अपने अनुभवों तथा जो कुछ भी वे सीखते हैं उसे तरह-तरह से पेश करने के भी। अधिकांशतः बच्चे स्वयं ही बाल-संसद और मीना मंच के जरिए इसका आयोजन और संचालन भी करते हैं। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि चेतना सत्र की गतिविधियाँ हमारे पाठ्यक्रम और कक्षा के कार्य-कलापों से क़रीबी तौर पर जुड़ी हुई होती हैं। स्थानीय संस्कृति से जुड़ी जन-प्रार्थनाओं की मधुर धुनें, जिनमें कई मौक़ों पर सांस्कृतिक रंग लिए हुए गीतों को भी शामिल किया जाता है, इस सत्र का सार हैं। यह गतिविधियाँ सुबह की सभा की नीरसता को तोड़ती हैं और उसमें एक नई ताज़गी और ऊर्जा भरती हैं। जिस तरह से बच्चों को कतारबद्ध करके खड़ा किया जाता है, उसे हम पहली से आठवीं कक्षा तक सिखाई जाने वाली गणित की अवधारणाओं के साथ बड़ी

आसानी से जोड़ सकते हैं। इसके अलावा चेतना-सत्र और कक्षा, दोनों में ही बच्चों को चर्चाएँ करने, अपनी कल्पना का इस्तेमाल करने और अपने अनुभवों को प्रस्तुत करने के न सिर्फ़ यह, बल्कि चेतना-सत्र बच्चों को नेतृत्व करने के ऐसे मौक़े देता हैं जिसमे वे सहयोग, समन्वय, सहायता व एक-दूसरे को अनुशासित करना सीखते हैं और साथ ही वे सौहार्दपूर्ण और दोस्ती भरे माहौल में स्थानीय परम्पराओं और संस्कृति का सम्मान करना भी सीखते हैं।

चेतना सत्र में सार्वजनिक सम्बोधन के उपकरणों का इस्तेमाल किया जाता है। इससे बच्चों के अन्दर की झिझक दूर होती है क्योंकि उन्हें पता होता है कि उनके माता-पिता, अभिभावक और समुदाय के लोग उन्हें देख और सुन रहे हैं, जो उनकी

सराहना भी करते हैं और उनको फ़ीडबैक भी देते हैं। कभी-कभी बच्चों को सम्बोधित करने के लिए स्थानीय हस्तियों, दस्तकारों और शिल्पकारों को बुलाया जाता है और वे बच्चों के साथ अपने अनुभव साझा करते हैं। बच्चों को वहाँ उनसे सवाल पूछने और अपने अनुभव बाँटने का मौक़ा मिलता है। इस तरह हम चेतना सत्र की, खूब सोची-विचारी गई अवधारणा के तहत थोड़े जीवन्त बदलाव करते हुए सुबह की एक साधारण सभा को सीखने का एक महत्त्वपूर्ण स्थान बनाने में कामयाब हुए हैं।

हमारे स्कूल में बच्चों की सक्रिय सहभागिता पर आधारित मीना मंच और बाल-संसद का भी आयोजन किया जाता है, जिनका सीधा सम्बन्ध कक्षा से बाहर सीखने के साथ है। असल में यह बच्चों के दो लोकतांत्रिक मंच हैं, जो बच्चों के लिए हैं और बच्चे ही उन्हें चलाते हैं, जहाँ वे नेतृत्व के कौशल, सक्रिय भागीदारी, निर्णय लेना, स्व-अनुशासन, सहयोग, तालमेल, दूसरों को ज़िम्मेदारी सौंपना और उसे साझा करना, एक-दूसरे की मदद करना, सामूहिक ज़िम्मेदारी लेना, एक टीम के रूप में काम करना, काम की जवाबदेही लेना, नए विचारों का सृजन करना, ख़ुद अपने ऊपर ग़ौर करते हुए

आलोचनात्मक तरीक़े से सोच-विचार करना, संसाधनों की पहचान करना और उनका सृजन करना, लोकतांत्रिक तरीक़े से योजना बनाना, उसे लागू करना और उसका मूल्यांकन करना वग़ैरह सीखते हैं।

बाल-संसद की अध्यक्षता प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है, जिनके साथ उप-प्रधानमंत्री और कई मंत्रालय जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, विज्ञान और पुस्तकालय, जल और कृषि, संस्कृति एवं खेल-कूद मंत्रालय आदि होते हैं जिनके प्रमुख, मंत्री और उप-मंत्री होते हैं। इसके अलावा आपदा नियंत्रण के लिए भी मंत्री का प्रावधान होता है। उप-शिक्षा मंत्री के रूप में एक छात्रा को ही नियुक्त किया जाता है जो मीना मंच की पदेन

मुखिया होती है और उसे मीना मंत्री के नाम से भी जाना जाता है। हर मंत्रालय की एक पन्द्रह सदस्यीय कार्यकारी समिति होती है जो उसके काम-काज को सुचारू ढंग से चलाने में मदद करती है। सभी मंत्री और कार्यकारी समिति के सारे सदस्य पाँचों 'सदनों' से चुने जाते हैं और प्रत्येक सदन का उचित और आनुपातिक प्रतिनिधित्व होता है।

बाल-संसद की गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाने और उनमें तालमेल बैठाने के लिए एक शिक्षक-समन्वयक भी रहता है। यह एक आत्मनिर्भर और टिकाऊ मॉडल साबित हुआ है जहाँ बच्चों को मिल-जुलकर और लोकतांत्रिक तरीक़े

से काम करने के भरपूर मौक़े मिलते हैं। पदाधिकारियों की भूमिका और ज़िम्मेदारी यहाँ एकदम स्पष्ट रूप से तय है। एजेंडा और मुद्दों पर चर्चा करने के लिए मासिक और पाक्षिक मीटिंग की जाती हैं जिनकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री करते हैं, जिनमें मूल्यांकन के साथ-साथ आगे की योजनाएँ भी बनाई जाती हैं, प्राथमिकताएँ तय की जाती हैं और फ़ैसले लिए जाते हैं। मीटिंग में हुई कार्यवाही का ब्यौरा भी रखा जाता है। बाल-संसद सामूहिक रूप से सीखने का ऐसा अवसर बन जाता है जिसमें बच्चे पूरे जोश और लगन के साथ सीखते हैं और सराहना एवं अपनेपन की भावना के साथ ज़िम्मेदारी लेने और निभाने के लिए तैयार होते हैं। ऐसा ही एक और ऊर्जा से भरपूर मंच है मीना मंच, जहाँ लड़कियों को सीखने के भरपूर मौक़े मिलते हैं। छठी कक्षा से लेकर आठवीं कक्षा तक की सारी लड़कियाँ उसकी सदस्य होती हैं। जैसे कि पहले बताया गया है बाल-संसद की उप-शिक्षा मंत्री इसकी मुखिया होती है, जिसे मीना मंत्री कहा जाता है। इसकी समन्वयक एक महिला शिक्षक होती हैं जो इसकी गतिविधियों का समन्वयन करती हैं और उन्हें सुचारू रूप से चलाने में मदद करती हैं।

मीना मंच की बैठक भी महीने में दो बार होती है जिसमें शैक्षणिक और दूसरे सम्बन्धित मामलों पर चर्चा की जाती है। सदस्यों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाता है कि वे विद्यालय में लड़कियों के दाख़िले और अलग-अलग गतिविधियों में लड़कियों की उपस्थिति और प्रतिभागिता को बढ़ावा देने के लिए पहल करें।

वे शैक्षणिक मामलों के साथ-साथ व्यक्तिगत और सामुदायिक स्वास्थ्य, साफ़-सफ़ाई के मुद्दे, सामाजिक कुरीतियों जैसे बाल-विवाह, बाल-मज़दूरी, लड़कियों के साथ होने वाले बुरे व्यवहार, उनकी भ्रूण-हत्या, दहेज और बालिकाओं से जुड़े सांस्कृतिक लांछन या कलंक, उन सब पर चर्चा करते हैं, और उन पर काबू पाने और उन्हें जड़ से उखाड़ फेंकने हेतु जागरूकता लाने के लिए स्कूल और समुदाय में कई तरह के कार्यक्रमों और गतिविधियों का आयोजन करते हैं।

मीना मंच की सफलता से जुड़ी हुई ऐसी कई कहानियाँ हैं जिनमें बाल-विवाह को होने से सफलतापूर्वक रोका गया। बहुत सारे स्कूलों में, *मीना मंच* के प्रभाव की वजह से स्कूल में लड़कियों के दाख़िले और उनकी उपस्थिति को ज़बरदस्त बढ़ावा मिला है और यह असल मायनों में लड़कियों का सशक्तिकरण है। लड़कियाँ स्वयं अपने द्वारा आयोजित कार्यक्रमों के माध्यम से अपने अधिकारों और समाज में अपने योगदान तथा विभिन्न जीवन-कौशलों के बारे में सीखती हैं। *बाल-संसद* और मीना मंच का गठन हर अकादमिक सत्र के शुरू में किया जाता है और अब दूसरी जगहों के सरकारी स्कूलों ने भी चुनाव आयोग द्वारा की जाने वाली चुनावी प्रक्रिया को अपनाना शुरू कर दिया है। इसमें बाल-संसद के चुनाव की तारीख़ें तय करना, फिर मतदाता-सूची तैयार करना, नामांकन के काग़ज़ भरना, चुनाव प्रचार, आदर्श आचार संहिता लागू करना, शिकायतों को दूर करना, रिटर्निंग आफ़िसर नियुक्त करना, पोलिंग बूथ

बनाना और पोलिंग पार्टियाँ गठित करना, मतदान की पर्चियाँ तैयार करना, वोटों की गिनती करना और नतीजों का ऐलान वगैरह सब शामिल होता है। इस सारी प्रक्रिया में विद्यार्थियों को लोकतांत्रिक चुनाव प्रक्रिया के बारे में बहुत कुछ सीखने को मिलता है और एक लोकतंत्र के नागरिक होने के नाते उसके महत्त्व को नज़दीक से समझने का मौक़ा भी मिलता है। ऐसे मंचों के ज़रिए वे संस्थागत व्यवहार, अनुशासन और तौर-तरीक़े सीखते हैं।

स्कूल आपदा प्रबन्धन कमेटी (एसडीएमसी) एक और ऐसा मंच है जिसमें बच्चे पूरे जोश के साथ हिस्सा लेते हैं और अपने स्कूल में और उन इलाकों में जहाँ से वह आते हैं, ख़तरों की पहचान करना सीखते हैं। वह उन सम्भावित ख़तरों की पहचान करना सीखते हैं जो मनुष्यों के जान-माल के साथ-साथ प्रकृति पर भी अपना असर डाल सकते हैं। वे बचाव कार्यों, प्राथमिक उपचार और पुनर्वास के बारे में सीखते हैं। इसके लिए बच्चों के एक बड़े हिस्से का प्रतिनिधित्व करने वाली बारह से तेरह सदस्यों की एक समिति बनाई जाती है, जिसमें बाल संसद के सभी मंत्री, मीना मंत्री, एक शिक्षक, वीएसएस के चेयरमैन और तीन बाल-प्रेरक (सिखाने वाले हमउम्र सहयोगी) होते हैं, जो हर शनिवार को विभिन्न आपदाओं की मॉक-ड्रिल के

दौरान दूसरे विद्यार्थियों को बचाव कार्यों के बारे में सिखाते और अभ्यास करवाते है। चूँकि बिहार राज्य बार-बार आने वाली बाढ़, सूखे और दूसरे कुदरती संकटों से प्रभावित रहता है, इसलिए एसडीएमसी की भूमिका न सिर्फ़ बचाव-कार्य और पुनर्वास के लिए बल्कि बच्चों की नियमित शिक्षा को जारी रखने के लिए भी बहुत अहम हो गई है। इस तरह प्राकृतिक आपदाओं, मनुष्यों द्वारा खड़े किए जा रहे संकटों की रोकथाम, नियंत्रण, बचाव और पुनर्वास, इन सबके बारे में सीखना सुनियोजित एवं स्वाभाविक रूप से होता है। इन सारे ड्रिल एवं अभ्यासों को बच्चे काफ़ी पसन्द करते हैं और उसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। और भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जो भी वे सीखते हैं उसे समुदाय के लोगों के साथ साझा भी करते हैं ताकि हर तरह की सुरक्षा सुनिश्चित हो सके।

पोषण वाटिका (दोपहर के भोजन) की अवधारणा भी कक्षा के बाहर बच्चों को बहुत कुछ सिखाती है। बच्चे यहाँ समानता व समता, भोजन के महत्त्व व उसके संरक्षण, सेहत और साफ़-सफ़ाई, निजी और सामूहिक ज़िम्मेदारी और सामुदायिक जीवन के बारे में सीखते हैं। इसके दूसरे फ़ायदे यह भी हैं कि बच्चों में खेती से जुड़े मामलों, मिलने वाले पोषण और हमारे रोज़ाना के

जीवन और स्वास्थ्य को बनाए रखने में पौधों की भूमिका के बारे में संवेदनशीलता बढ़ती है। वे श्रम के महत्त्व को सीखते हैं और अपने जीवन में दूसरों के योगदान का सम्मान करना भी।

बच्चों की वास्तविक शिक्षा कक्षा की चारदीवारी या उससे जुड़ी गतिविधियों तक ही सीमित नहीं हैं। कक्षा से बाहर सीखने का दायरा बहुत फैला हुआ है। दरअसल बच्चे अपने सन्दर्भ से, आस-पास के वातावरण से, संस्थागत ढाँचे से, समुदाय के लोगों से और भी न जाने कितनी ही चीज़ों से सीखते हैं। हमें उन पर कक्षा की चारदीवारी के भीतर सिमटने या किताबी कीड़ा होकर रह जाने का दबाव नहीं डालना चाहिए। बल्कि इस तरह का माहौल बनाना चाहिए जिसमें उन्हें नए-नए अनुभवों का मज़ा लेते हुए सीखने के मौक़े मिलें। सीखने क़ा दायरा बहुत व्यापक है जिसकी सीमाएँ आसमान से भी परे हैं।

मनोज कुमार त्रिपाठी भेलदुमारा, आरा, भोजपुर बिहार में *उत्क्रमित मध्य विद्यालय* के हेडमास्टर हैं। वे डायट पिरौता, भोजपुर और एससीईआरटी के साथ गहन रूप से काम करते हैं वे 'टीचर्स ऑफ़ बिहार : द चेंज मेकर्स' के संस्थापक हैं जो कि एक वेब आधारित शैक्षणिक पोर्टल एवं लर्निंग कम्युनिटी है। उनसे *manojtripathy365@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

शिव कुमार कपिलदेव मध्य विद्यालय, मोरियावा, विक्रम, पटना, बिहार के सीआरसीसी हैं और एससीआरटी, बिहार और बिहार ऐजुकेशन प्रोजेक्ट काउंसिल पटना के साथ जुड़े हुए हैं। वे विभिन्न विषयों पर इन-सर्विस ट्रेनिंग मोड्यूल, लघु फ़िल्में बनाने और डीएलएड की अध्ययन सामग्री विकसित करने का कार्य करते हैं। वे भी 'टीचर्स ऑफ़ बिहार : द चेंज मेकर्स' के संस्थापक हैं जो कि एक वेब आधारित शैक्षणिक पोर्टल एवं लर्निंग कम्युनिटी है। उनसे *shivkumar800@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : बलराम बोधि **पुनरीक्षण** तथा **कॉपी एडीटिंग** : स्वाति भदौरिया

पुस्तकें : झरोखा दुनिया का

मनोज निगम

कहते हैं कि बच्चे देश, समाज का भविष्य होते हैं और पुस्तकें उनका आईना। समझ विकसित करने में पाठ्यपुस्तकें नाकाफ़ी हैं। कक्षा के बाहर भी एक दुनिया है और इस दुनिया का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा पुस्तकें हैं। लेकिन बच्चों के लिए अच्छी पुस्तकों की उपलब्धता हमारे देश में बहुत कम है, आप इस बात से अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि एक सर्वे के अनुसार यूनाईटेड किंगडम में जहाँ एक बच्चे के पास छह पुस्तकें उपलब्ध होती हैं, वहीं भारत में पाँच बच्चों पर केवल एक पुस्तक उपलब्ध है। इतना बड़ा अन्तर! यह जानकारी सरकार-समाज को नहीं है, जबकि सब मानते हैं कि बेहतर पुस्तकें पढ़ना व्यक्तित्व विकास के लिए बहुत ही ज़रूरी है।

जब भी शिक्षा व्यवस्था में सुधार या सीखने-सिखाने की बात होती है या शैक्षिक नीतियाँ बनती हैं, तो अधिकतर, पढ़ने की आदत के विकास के लिए चिन्ता व्यक्त की जाती है और स्वतंत्र रूप से सीखने के लिए पुस्तकालयों के महत्त्व की बात होती है। मुदलियार आयोग की रपट में कहा गया था कि पुस्तकालय को विद्यालय की सबसे आकर्षक जगह होना चाहिए। बुनियादी साक्षरता की मज़बूती के लिए पुस्तकों और पुस्तकालयों को बहुत महत्त्व दिया जाता रहा है। नई शिक्षा नीति 2019[1] के प्रारूप में भी स्कूल और सार्वजनिक (सरकारी) पुस्तकालयों को विस्तार देना एवं पढ़ने और संवाद करने की संस्कृति को विकसित करने को प्रमुखता से दर्ज किया है।

पढ़ने की संस्कृति को विकसित करने के उद्देश्य से एकलव्य फ़ाउंडेशन के शैक्षिक नवाचारों की शुरुआत से ही पुस्तकालय विभिन्न शैक्षिक परियोजनाओं का एक महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य हिस्सा रहा है। जहाँ बच्चे कक्षा में पाठ्यपुस्तक के अलावा भी पुस्तकें पढ़ सकें, पुस्तकों के इर्द-गिर्द विभिन्न गतिविधियाँ कर सकें। लगभग तीन दशक पहले के उस दौर में भी देश में, ख़ासतौर पर हिन्दी भाषी इलाकों में, न तो पुस्तक पढ़ने की संस्कृति थी और न ही पुस्तकों की उपलब्धता। एकलव्य ने यह पाया कि बच्चों के लिए तथा शिक्षा पर, गुणवत्तापूर्ण पुस्तकों की कमी है, और प्रकाशक भी कम ही हैं, माँग तो नहीं है लेकिन ज़रूरत तो है ही। एकलव्य ने शिक्षा के क्षेत्र में अपने ज़मीनी अनुभवों से काफ़ी कुछ सीखा था।

बच्चों की पुस्तकों की ज़रूरत

शैक्षिक नज़रिए से बच्चों की उम्र और रुचि के अनुसार पुस्तकों की बहुत कमी थी, कुछ पुस्तकें थीं भी तो उनकी क़ीमतें आम आदमी की जेब से बाहर थीं। हिन्दी में किशोरों के लिए और रचनात्मक गतिविधियों की पुस्तकें तो लगभग नहीं के बराबर थीं। शिक्षकों के लिए भी उपलब्ध पुस्तकों का यही हाल था। शिक्षाशास्त्रीय पुस्तकें उपलब्ध नहीं थीं, कुछ थीं भी तो उनको पढ़कर समझना मुश्किल था। इन्हीं कमियों को देखते हुए एकलव्य ने बाल-विज्ञान पत्रिका *चकमक, शैक्षिक संदर्भ* और *स्रोत* के प्रकाशन के अनुभव के आधार पर प्रकाशन कार्यक्रम की शुरुआत की। शुरुआती चार-पाँच वर्षों में एकलव्य के प्रकाशन उसके अपने कार्यक्षेत्र में ही उपयोग किए जाते रहे। अपने कार्यक्षेत्र से बाहर पुस्तकों की उपलब्धता की कमी का अन्दाज़ा तो था हमें लेकिन कोई अनुभव नहीं था। हम मानते थे कि अँग्रेज़ी में बच्चों के लिए भारतीय सन्दर्भ में अच्छी पुस्तकें उपलब्ध होंगी। हिन्दी और अन्य भाषाओं में उस दौर में नेशनल बुक ट्रस्ट और चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट जैसे कुछेक प्रकाशन संस्थान ही थे। 1990 के दशक में जब प्रकाशन के क्षेत्र में थोड़ा अनुभव हुआ तो यह जाना कि न केवल हिन्दी में बल्कि अँग्रेज़ी में भी बच्चों के साहित्य की बहुत कमी थी, अन्य भारतीय भाषाओं में बाल-साहित्य भी कम ही उपलब्ध था और बड़े शहरों को छोड़ दिया जाए तो उपलब्धता नगण्य थी।

2011 के आस-पास व्यवसायिक संस्थानों के सबसे बड़े एसोसिएशन फिक्की (FICCI[ii] -Federation of Indian Chambers of Commerce and Industry) ने प्रकाशन को एक अलग सेक्टर के रूप में देखना शुरू किया। भारतीय विंग की शुरुआत की गई जो कि प्रकाशन से जुड़े तमाम अध्ययन, सर्वे, सेमिनार, वर्कशॉप आदि कर रहा है। फिक्की के अनुसार प्रकाशन के क्षेत्र में भारत की गिनती दुनिया के सात बड़े देशों में की जाती है।

इसी तरह बेहतर और मौलिक बाल-साहित्य के निर्माण और प्रसार को सहायता देने वाला टाटा ट्रस्ट का *पराग* इनीशिएटिव भी बाल-साहित्य के पूरे ईको-सिस्टम को बेहतर

करने का प्रयास करता रहा है। *पराग* इनीशिएटिव के माध्यम से वेल्यूनोट्स संस्थान द्वारा किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि पिछले दो दशकों में संगठित क्षेत्र से करीब 100 प्रकाशक उभरे हैं। लेकिन इनमें 15 से 20 प्रकाशक ही उत्कृष्ट और मौलिक सामग्री को प्रकाशित कर उपलब्ध करवाते हैं। हालाँकि देश भर में बच्चों के लिए पुस्तकें छापने के लिए लगभग 2500 प्रकाशक हैं, लेकिन अधिकांश दोयम दर्जे की ही पुस्तकें प्रकाशित करते हैं। 2013-14 में कराए गए इसी अध्ययन[iii] के अनुसार देश में प्रकाशन का मार्केट लगभग 11,500 करोड़ रुपए का है, इसमें बाल साहित्य का मार्केट मुश्किल से 600 करोड़ रुपए का है, एवं 20-25 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ रहा है। बाल-साहित्य का मार्केट, कुल मार्केट साईज़ का 5 प्रतिशत है। देश में बाल-साहित्य की सबसे बड़ी ख़रीददार सरकार है। 30 प्रतिशत बाल-साहित्य शहरी इलाकों में जाता है जबकि 70 प्रतिशत ग्रामीण इलाकों में वितरण के लिए होता हैI

एकलव्य के प्रकाशन

एकलव्य के प्रकाशनों को विकसित करने एवं उनको प्रसारित करने का काम टाटा ट्रस्ट एवं कुछ अन्य संस्थाओं के समर्थन से निर्बाध रूप से चलता रहा। टाटा ट्रस्ट के अध्ययन में भी यह निष्कर्ष निकला कि बाल-साहित्य को विकसित करने में बहुत सारी चुनौतियाँ हैं जैसे कि बाल-साहित्य के क्षेत्र में टैलेन्ट की कमी है, मौलिक बाल-साहित्य को विकसित करने में बहुत अधिक ख़र्चा होता है। साथ ही रचनाकारों को मेहनताना और पहचान भी कम ही मिल पाता है। तमाम चुनौतियों के बावजूद भी एकलव्य के प्रकाशनों के पोर्टफ़ोलियो में आज 450 से अधिक पुस्तकें हैं। इसमें छोटे बच्चों, किशोरों, शिक्षकों, शैक्षिक कार्यकर्ताओं की रुचियों और ज़रूरत के अनुसार चित्रकथाएँ, कहानी, कविता गतिविधियों की पुस्तकें, नाटक, पज़ल्स, शिक्षाशास्त्र सम्बन्धी पुस्तकें, नवाचारी पाठ्यपुस्तकें हैं। पुस्तकें और साहित्य, विभिन्न फार्मेट में विकसित किए गए हैं, जैसे छोटी पुस्तकें, बड़ी पुस्तकें (big books), अकार्डियन पुस्तकें, कार्ड्स, पोस्टर्स ताकि पाठक अपनी ज़रूरत के अनुरूप इनका उपयोग कर सकें।

गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक पुस्तकों की कमी को पाटने के लिए एकलव्य के साथ ही अन्य कुछ संस्थाओं जैसे प्रथम, तूलिका, कथा, ए एंड ए पब्लिशर्स, ज्योत्सना प्रकाशन, सीएलआर, अन्वेषी, सहमत आदि ने भी बेहतर पुस्तकों को प्रकाशित किया है। नेशनल बुक ट्रस्ट, एनसीईआरटी, चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट, नवनीत प्रकाशन, स्कालास्टिक इंडिया जैसी संस्थाएँ तो पहले से काम कर ही रहीं थीं।

वर्ष 2000 तक एकलव्य द्वारा विकसित की गई पुस्तकों की संख्या 50-60 के आस-पास पहुँच चुकी थी। विश्व पुस्तक मेले जैसे आयोजनों में हमारा जाना हुआ और हमारी पुस्तकों को उत्साहवर्धक रेस्पोंस मिला। इसी दौरान हमने यह पाया कि एकलव्य ने ही बाल-साहित्य और शिक्षा-साहित्य पर अच्छा काम किया हो ऐसा नहीं है, देश की कुछ अन्य संस्थाओं और प्रकाशकों ने भी इस क्षेत्र में बेहतरीन काम किया है। लेकिन सभी के सामने एक बड़ी दिक़्क़त यह थी कि उनके प्रचार-प्रसार के चैनल बहुत ही सीमित थे।

पिटारा की पहल

उसी दौरान यह आईडिया आया कि क्यों न एक ऐसी जगह बनाई जाए, जहाँ न केवल एकलव्य के बल्कि देश भर के तमाम प्रकाशकों एवं संस्थानों के द्वारा विकसित, बच्चों एवं शिक्षा पर उपलब्ध पुस्तकों एवं टीएलएम को इकट्ठा कर आम लोगों के लिए उपलब्ध करवाया जाए। अब तक हम पुस्तकों को अपने ऑफिस के अन्दर एक छोटे-से अँधेरे स्टोर रूम में रखते थे। उसी समय एक बदलाव यह हुआ कि हमारे तत्कालीन निदेशक जो कि हमारे भोपाल के ऑफिस से सटे हुए गैराज में बैठा करते थे, उनके लिए अलग ऑफिस की व्यवस्था हुई तो यह तय किया गया कि इस गैराज में हम एक ऐसी जगह बनाएँगे जहाँ आम-जन, शिक्षक, संस्थाओं के कार्यकर्ता आ सकें, पुस्तकें देख-पढ़ सकें और उन्हें ख़रीद सकें। इस जगह का नाम हमने *'पिटारा'* रखा और बाद में इसको *पिटारा*-वन स्टाप एजूकेशन स्टोर का नाम दिया गया। भोपाल में उस वक़्त पढ़ने-पढ़ाने की संस्कृति कम ही थी फिर भी पिटारा को अच्छा रेस्पोंस मिला। इससे उत्साहित होकर हमने एकलव्य के इन्दौर ऑफिस में भी पिटारा की शुरुआत की, और वहाँ भी रेस्पोंस बहुत ही उत्साहवर्धक रहा।

फिर हमने यह सपना देखा कि क्यों न देश भर के तमाम शहरों में पिटारा की स्थापना की जाए। लेकिन अपने पास उपलब्ध स्रोतों की कमी को देखते हुए हमने अन्य शहरों में शिक्षा में काम कर रहीं संस्थाओं और छोटे समूहों के साथ मिलकर इसे करने का सोचा और विभिन्न शहरों में संस्थाओं से सम्पर्क करना शुरू किया। कुछ संस्थाओं को यह पहल अच्छी लगी और फिर दुर्ग, फैज़ाबाद, मुम्बई, उदयपुर, कानपुर, कोलकाता, दिल्ली, गुड़गाँव, जम्मू, सूरत, वल्साड़, पटना, रायपुर, पुणे जैसे शहरों में *पिटारा* की शुरुआत हुई।

पिटारा में नेशनल बुक ट्रस्ट, चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट, तूलिका, कथा, प्रथम, नवनीत, एनसीईआरटी, विज्ञान प्रसार, पर्यावरण एजूटेक, होमी भाभा सेंटर फॉर साइंस, निरन्तर, सहमत, अरविन्द कुमार पब्लिशर्स, समावेश, जोड़ो ज्ञान, नवनिर्मिति, मांटेसरी बाल शिक्षण समिति जैसी करीब 50 संस्थाओं की 2500 से अधिक चुनिन्दा पुस्तकों को रखा गया। जैसे-जैसे

फैलाव होता गया वैसे-वैसे ही तमाम अच्छे-बुरे अनुभवों से भी रूबरू होना पड़ा। सबसे अधिक मुश्किल तो *पिटारा* जैसे प्रभाग को सस्टेन करने की रही। जिन भी संस्थाओं के माध्यम से पिटारा की शुरुआत की गई, उनकी ओर से *पिटारा* को सब्सिडी दी गई। इस सपने को पूरा करने के लिए टाटा ट्रस्ट ने भी हमें शुरुआती आर्थिक समर्थन दिया। लगभग 10 सालों के दौरान 22 शहरों में *पिटारा* खुले। हमें लगने लगा था कि हम देश भर में, 50 से अधिक शहरों में *पिटारा* खोलकर गुणवत्तापूर्ण बाल-साहित्य और शिक्षा-साहित्य को प्रसारित करके पढ़ने-पढ़ाने का एक माहौल बना सकेंगे। लेकिन बिक्री की कमी के चलते आर्थिक संकटों से जूझते हुए हमें यह स्वीकार करना पड़ा कि अच्छी पुस्तकों को उपलब्ध करवाना भले ही हमारा उद्देश्य हो लेकिन *पिटारा* का हमारा मॉडल एक तरह से घाटे का मॉडल ही था।

हालाँकि पिटारा जैसी पहल को चलाए रखने में तो हम बहुत अधिक सफल नहीं हो सके। लेकिन इसके माध्यम से हम शिक्षा और बच्चों से जुड़ी ग़ैर–सरकारी संस्थाओं में, पुस्तक मेलों में, सरकार की विभिन्न स्कीमों में, स्कूलों में पैरेंट्स-टीचर मीटिंग के दौरान बच्चों और शिक्षा पर चुनिन्दा पुस्तकों को प्रचारित-प्रसारित कर रहे थे। एकलव्य के, शिक्षा के क्षेत्र में लम्बे अनुभव के कारण *पिटारा* की एक उपलब्धि यह रही कि हम गुणवत्तापूर्ण पुस्तकों और टीएलएम का एक बेहतर रिसोर्स, कम कीमत पर पाठकों को उपलब्ध करवा सके। साथ ही, एकलव्य से जुड़ी तमाम संस्थाओं, शैक्षिक कार्यकर्ताओं, बहुत सारे पालकों, शिक्षकों के बीच हम यह विश्वास बना पाए कि *पिटारा* में जो पुस्तकें एवं शैक्षिक सामग्री मिलेगी वह शिक्षा के नज़रिए से चुनी हुई होगी। यह सुविधा तो है ही कि एक ही छत के नीचे देश भर की चुनिन्दा पुस्तकें उपलब्ध हो रही हैं। इंटरनेट की सुविधा के विस्तार के बाद, दूर-दराज के पाठकों की सुविधा के लिए शापिंग पोर्टल pitarakart.com की शुरुआत की गई।

इसी दौरान, इन पुस्तकों का उपयोग कैसे किया जाए इसके मार्गदर्शन के लिए विभिन्न संस्थाओं और स्कूलों से माँग के चलते एकलव्य और अन्य संस्थाओं में कार्यशालाएँ आयोजित की जाने लगीं। पढ़ने-पढ़ाने की संस्कृति को विकसित करने के लिए स्कूलों में स्टोरी टेलिंग सेशन्स के माध्यम से बच्चों और शिक्षकों तक पहुँच बनी। पुस्तकों में दी गई विज्ञान, सामाजिक अध्ययन और भाषा की गतिविधियों, क्राफ्ट, ओरिगेमी आदि को बड़े पैमाने पर फैलाया गया।

ग्रामीण इलाकों में बाल-साहित्य

टाटा ट्रस्ट के अध्ययन के अनुसार 70 प्रतिशत पुस्तकें ग्रामीण इलाकों में वितरण के लिए होती हैं जिनमें से लगभग 20 प्रतिशत ही पाठकों तक पहुँचती हैं। पुस्तकों को कितने बच्चे खोलते और पढ़ते होंगे, इसके कोई आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। कई प्राइवेट स्कूलों में लाईब्रेरी बस अपने स्कूल की मान्यता बरकरार रखने के लिए, अधिकारियों को दिखाने भर के लिए होती है।

एकलव्य द्वारा मध्यप्रदेश के देवास और उज्जैन ज़िले एवं बैतूल ज़िले के आदिवासी बहुल इलाके शाहपुर के लगभग 17 गाँवों में किए गए एक अध्ययन[iv] के अनुसार 100 परिवारों में पुस्तकों की प्राथमिकता एकदम आख़िरी में थी। केवल एक ही परिवार के सदस्य ने ज़िला मुख्यालय में जाकर एक पुस्तक ख़रीदी थी। इस अध्ययन के बाद हमारे कुछ प्रयास पुस्तकों को अधिक छूट पर गाँवों में पहुँचाने के रहे। ग्रामीण इलाकों के साप्ताहिक हाट में हम पुस्तकों के स्टाल लगाने लगे। वहाँ हमें कई मज़ेदार अनुभव हुए जैसे कहा गया कि इन लोगों को कहीं से मुफ़्त में पुस्तकें मिल गई हैं इसीलिए यह लोग गाँव में सस्ती पुस्तकें दे रहे हैं। देवास जिले के एक साप्ताहिक हाट में गए तो वहाँ बिक्री तो नहीं हो रही थी लेकिन बच्चे और महिलाएँ पुस्तकों को उलट-पलट कर देख रहे थे। हमारे लिए यह ख़ुशी और सुकून की बात थी। हाट में जामुन बेचता हुआ एक बच्चा मिला, जिससे हमने पाँच रूपए के जामुन लिए। हमें सुखद आश्चर्य हुआ कि वही बच्चा पाँच रूपए लेकर आया और एक पुस्तक ख़रीदकर ले गया। यह हमारे लिए एक सुखद घटना थी लेकिन सच्चाई यह भी थी कि इस हाट बाज़ार की बिक्री से हमारे आने-जाने का ख़र्च भी नहीं निकल सका। आगे भी ग्रामीण इलाकों में पुस्तकों की पहुँच की कोशिशें जारी रहीं लेकिन आर्थिक कारणों से हम उसे आगे नहीं बढ़ा सके। लेकिन यह सुकून है कि तमाम संस्थाओं की विभिन्न परियोजनाओं के माध्यम से ग्रामीण और सुदूर इलाकों में बच्चों तक पुस्तकें पहुँच रही हैं।

शहरों में स्थिति

इसी दौर हमने कुछ शहरों में छानबीन की तो मालूम हुआ कि किसी भी शहर में बच्चों के लिए पुस्तकें एक छत के नीचे उपलब्ध नहीं थीं। कुछ नामी प्रकाशकों के बिक्री केन्द्र सिर्फ़ बड़े शहरों में थे, इनमें भी केवल उन्हीं प्रकाशकों की पुस्तकें मिल पाती थीं। यानी बच्चों के लिए अच्छी पुस्तकों का अभाव तो था ही और उपलब्धता बिल्कुल नहीं के बराबर थी। कुछ संस्थाओं और प्रकाशनों ने अच्छी पहल की थी लेकिन उनकी समस्या थी पुस्तकों का वितरण। अधिकांश अच्छा साहित्य विकसित होकर गोदामों में पड़ा था। यह भी एक सच्चाई थी कि कम क़ीमत और बेहतर गुणवत्ता वाली पुस्तकों के लिए बाज़ार में कोई भी चैनल उपलब्ध नहीं थे और बच्चों के पास, अपने लिए पुस्तकें खरीदने की स्वतंत्रता नहीं होती है। स्कूल एक ज़रिया हो सकता था, यह सोचकर

हमारी कोशिशें स्कूलों में पैरेन्ट्स मीटिंग के दौरान पुस्तकों के प्रचार-प्रसार की रही। यहाँ से एक अनुभव तो यह हुआ कि हिन्दी क्षेत्र के पाठक, अभिभावक पुस्तकों पर ख़र्च कम करते हैं और नामी स्कूलों के अभिभावक सस्ती पुस्तकों को खरीदना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते हैं।

मेरे अनुभव के अनुसार पालक धीरे-धीरे बाज़ार की प्रवृत्ति को समझ रहे हैं, वे किताबें ख़रीद भी रहे हैं और स्कूलों से अच्छी पुस्तकों की माँग भी कर रहे हैं। केन्द्रीय विद्यालयों में बच्चों को पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाना भी एक सकारात्मक क़दम है। फिक्की के अनुसार मानव मूल्यों के विकास और उनके प्रोत्साहन के लिए पुस्तकें हमेशा से ही एक ज़रूरी माध्यम रही हैं। पुस्तकें राष्ट्र के उत्थान के लिए उत्प्रेरक का काम करती रही हैं, वे नए विचारों को सहेजने, उनको फैलाने, शिक्षा और मूल्यों को प्रोत्साहित करने और सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में सहायक होती हैं।

तमाम समस्याओं के बावजूद देश का प्रकाशन सेक्टर 30 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि की दर से आगे बढ़ रहा है। यह एक सकारात्मक बात है लेकिन ऐसे कई सवाल हैं जिन पर भविष्य में चिन्तन-अध्ययन करना होगा कि इस वृद्धि का कितना हिस्सा मौलिक और उत्कृष्ट सामग्री का है, उसमें से कितनी सामग्री पाठकों तक पहुँचती है, कितने पाठक पढ़ते हैं या फिर उक्त आँकड़ों में हेर-फेर की गई है। इनमें पाठ्यपुस्तकों, कुंजियों, गाईडों, धार्मिक और ग़ैर-धार्मिक साहित्य, राजनैतिक साहित्य कितना है? लेखकों, रचनाकारों के शोषण का आँकड़ा कोई क्यों निकालेगा भला। आम आदमी पुस्तकें ख़रीद सके ऐसा हो सकेगा क्या? लोक भाषाओं में पुस्तकें हैं कि नहीं, नहीं हैं तो कौन बनाएगा?

सस्टेनेबिलिटी की महत्त्वपूर्ण चुनौती को साथ रखते हुए चिरन्तन विकास की ओर अग्रसर, समतापूर्ण और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिए, सभी के लिए सार्थक शिक्षा के सपने को पूरा करने के सफ़र में सैकड़ों कार्यकर्ता, हजारों रचनाकार, और लाखों पाठक साथ हैं। उम्मीद है हमारी यह पीढ़ी भारत में, 5 बच्चों के लिए एक पुस्तक की उपलब्धता के आँकड़े को कुछ बेहतर कर पाएगी।

References

i *Draft National Education Policy 2019*, https://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/Draft_NEP_2019_HI.pdf

ii *http://ficci.in/sector.asp?secid=86*, Publishing Sector Profile

iii *ValueNotes. 2013. Mapping Study of Children's Literature in India, Mumbai*, Tata Trusts

iv *Rural outreach pilot study*, Abhishek Sudhakar

मनोज निगम एकलव्य, भोपाल में कार्यकारी अधिकारी (Executive Officer) हैं और 25 वर्षों से भी अधिक समय से युवा प्रोफ़ेशनल्स की एक टीम के साथ गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक सामग्री का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। वे एक उत्साही लेखक हैं और उनके लेख जनसत्ता, सुबह-सवेरे, देशबन्धु, चकमक, स्रोत एवं नया ज्ञानोदय में छपते रहे हैं। उनसे *manojnig@yahoo.co.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

इतिहास, कक्षा की चारदीवारी के बाहर : एक विद्यार्थी के अनुभव

नन्दन संक्रान्ति कौशिक

सीखने का मतलब है कुछ नया ज्ञान हासिल करना। कभी हमें यह बताया जाता है कि क्या सीखना है और कभी उसे हमारे ऊपर ही छोड़ दिया जाता है और कभी हम ख़ुद ही किसी चीज़ के बारे में सीखने का निर्णय लेते हैं और उसका ज्ञान हासिल करते हैं। वर्तमान दुनिया में कक्षा एक ऐसी जगह है जहाँ पर औपचारिक तौर पर शिक्षा दी जाती है, जो भी उनसे पहले घटित हुआ है उसके बारे में विद्यार्थियों को शिक्षित किया जाता है, ताकि उन्हें आस-पास की दुनिया के लिए तैयार किया जा सके, जिससे वे उस दुनिया में जाएँ और भविष्य में उसे बदल सकें।

हालाँकि, औपचारिक शिक्षा से दुनिया को देखने का एक मुकम्मल नज़रिया हासिल नहीं हो पाता। सिद्धान्त, व्यावहारिक शिक्षा के ऊपर भारी पड़ जाते हैं। असल में जो भी हम सीखते हैं, कभी-कभी उसका एक बहुत बड़ा हिस्सा कक्षा के बाहर ही होता है। कक्षा के बाहर का दायरा तो पूरे संसार में फैला हुआ है और यही तो है जिसमें दाख़िल होने के लिए स्कूल में हमें तैयार किया जाता है। सो उसमें धकेले जाने से पहले ही, उसका थोड़ा-सा स्वाद चख लेना हमारी तैयारी को बेहतर ही बनाता है। यहाँ पर मैं कक्षा के बाहर सीखने के अपने अनुभवों को प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मुझे इतिहास विषय में दिलचस्पी है। प्राचीन कलाकृतियों, पुरातन इमारतों, खण्डहरों, पुराने अभिलेखों और बीते ज़माने की चीज़ों के साथ मेरा एक ख़ास लगाव है। अगर यह चीज़ आज के समय की नहीं है तो फिर शायद मेरी इसमें दिलचस्पी होगी ही! हालाँकि अतीत हर किसी के पसन्द की चीज़ तो नहीं होता। मैं तो यह भी कहूँगा कि इतिहास एक ऐसा विषय है जिससे कुछ लोग नफ़रत करते हैं, लेकिन उसकी वजह है इसे पढ़ाने का तरीक़ा। हालाँकि इतिहास के कुछ बहुत ही शानदार अध्यापक भी हैं जो विषय को जीवन्त बनाने में सक्षम हैं, जो आँखों के सामने नक़्शा-सा खींच देते हैं और उसकी बहुत ही सुन्दर ढंग से व्याख्या करते हैं, लेकिन दुखद सच्चाई यह है कि जितने लोगों से मैं मिला हूँ उनमें से ज़्यादातर लोगों को इतिहास के ख़राब शिक्षक मिले जिन्होंने इस विषय में उनकी दिलचस्पी को हमेशा के लिए ख़त्म कर दिया। ऐसे एक शिक्षक से मेरा भी वास्ता रहा है, हालाँकि मेरे स्कूल में इतिहास विषय के ज़्यादातर शिक्षक थे। लेकिन कभी-कभार ऐसे शिक्षक भी होते थे जिन्हें केवल किताब में से पढ़ाना आता था, जिन्हें विषय का वास्तविक ज्ञान नहीं था, जो विद्यार्थियों को सिर्फ़ किताब में से प्रश्न-उत्तर लिखने का काम देते थे और इन्हीं शिक्षकों ने विषय को बरबाद किया था। ख़ैर, स्कूल की तरफ़ से हुए सारे नुकसान के बावजूद, मैंने क्लास के बाहर जो सीखा उसकी वजह से विषय के प्रति मेरा लगाव कम नहीं हुआ।

इससे पहले कि इतिहास में मेरी रूचि को स्थायी रूप से कोई नुकसान पहुँचता, नौवीं कक्षा में मेरा परिचय स्थानीय इतिहास से हुआ। जिसकी शुरुआत कूवम के सांस्कृतिक मानचित्रण से हुई। कितने लोगों को पता होगा कि कूवम नदी, जो अब लगभग एक नाला भर रह गई है, को एक समय पर चेन्नई की पवित्र नदी माना जाता था, जिसके तटों पर एक हज़ार साल से ज़्यादा पुराने मन्दिरों के अवशेष हैं? फिर वहाँ से मैं अड्यार के सांस्कृतिक मानचित्रण की दिशा में आगे बढ़ा। इसी बीच फ़ेसबुक के एक ग्रुप 'मद्रास लोकल हिस्ट्री ग्रुप' द्वारा पोस्ट की गई तस्वीरों और बेहद दिलचस्प जानकारियों के कारण इस विषय के प्रति मेरा खिंचाव और बढ़ गया।

फिर जैसे-जैसे मैंने पैदल यात्राओं, वार्ताओं और विरासत यात्राओं में हिस्सा लेना शुरू किया, स्थानीय इतिहास के साथ मेरा जुड़ाव बढ़ता गया, यहाँ तक कि मैंने ख़ुद भी कुछ पैदल-यात्राओं का प्रबन्ध करने में मदद की। इन शुरुआती दौरों में हमने बुनियादी जानकारियाँ इकट्ठी की, उस सारे मार्ग पर घूम-फिरकर देखा, इस बात का पता लगाया कि किन जगहों के लिए अनुमति लेनी होगी, उस हिसाब से यह तय किया कि किन-किन जगहों पर जाना है, उसके बारे में लोगों को जानकारी दी, और फिर कार्यक्रम वाले दिन लोगों को यात्रा पर ले गए। एक पत्रकार और इतिहासकार निवेदिता लुई के साथ मिलकर मैंने दो बार ऐसा किया।

इस सारे कुछ का संचालन करते हुए और उसमें हिस्सा लेते हुए मुझे इस बात का अन्दाज़ा हुआ कि जिस दौरान देश और दुनिया भर में बहुत कुछ घटित हो रहा था उस समय मेरे अपने शहर, चेन्नई, में आख़िर चल क्या रहा था, और साथ ही शहर के ऐतिहासिक महत्त्व को भी जाना। मिसाल के लिए जब शाहजहाँ की ताजपोशी हो रही थी, मद्रास शहर को उस वक्त चन्द्रगिरी के राजा से ख़रीदा जा रहा था। जब लोग भारत में पहली रेलवे लाइन की बात करते हैं, तो मुम्बई-थाणे लाइन की बात ही दिमाग़ में आती है। लेकिन उससे पहले भी मद्रास

में लाल पहाड़ियों से लकड़ी को नीचे लाने के लिए रेलवे का इस्तेमाल किया जा रहा था। रोयापुरम रेलवे स्टेशन देश का सबसे पुराना रेलवे स्टेशन है जो आज तक बचा हुआ है। भारत में लिफ्ट वाले सबसे पहले होटलों में से एक चेन्नई में था, जिसे बाद में बाटा के शो-रूम में बदल दिया गया था और पिछले साल व्यावसायिक हितों के लिए उसे गिरा दिया गया। इससे मुझे यह भी सीखने को मिला कि कैसे हमारी अज्ञानता की वजह से शहर में विरासत को उजाड़ा जा रहा है और मैंने यह भी जाना कि उसे रोकने के लिए कितनी कम कोशिशें हो रही हैं।

स्थानीय इतिहास के अलावा मैं अपने दादाजी के इकट्ठे किए प्राचीन सिक्कों के भण्डार, जिसे अब मैं धीरे-धीरे बढ़ा रहा हूँ, का भी शुक्रगुज़ार हूँ, जिससे मैंने मुद्राशास्त्र के बारे में सीखा। सिक्कों के मेलों में हिस्सा लेने, कई सदियों के दौरान ढाले गए तरह-तरह के सिक्कों के बारे में खोज करने, उनके अंकित मूल्य और सापेक्ष-मूल्य, इन सबसे मुझे पुरानी अर्थव्यवस्थाओं और अतीत में पैसे की पेचीदगियों को समझने का मौक़ा मिला। इसके साथ ही मुझे यह भी पता चला कि कैसे सिक्के हमारे समय का प्रतिनिधित्व करते हैं, उकेरी हुई चीज़ों और भाषा के ज़रिए। सिक्के और धातु दोनों के ही मूल्य से, और साथ ही उसकी आज की क़ीमत से, पता लगा सकते हैं कि राज्य आर्थिक रूप से कितना शक्तिशाली और कितना ख़ुशहाल था।

हेरिटेज वॉक के दौरान जब मैं पुराने और प्राचीन मन्दिरों में गया तो मैंने देखा कि मेरे भीतर उनकी दीवारों पर उकेरे गए लेखन में एक रुचि पैदा हो रही है। उनमें कहा क्या गया है, इसका पता लगाने के लिए मैंने आरईएसीएच फ़ाउंडेशन से एपिग्राफ़ी का कोर्स किया। चौदह रविवार और दो प्राचीन मन्दिरों की यात्राओं के बाद, अब मैं तमिल अभिलेख पढ़ सकता हूँ, पाँचवी ईसा-पूर्व पुरानी तमिल ब्रह्मी जो शिलालेखों और बर्तनों के टुकड़ों पर मिलती है, से लेकर पल्लव, चोल और विजयनगर के समय तक के तमिल अभिलेखों को भी, और उसे भी जिसे आमतौर पर मन्दिरों की दीवारों पर पाया जाता है, यहाँ तक कि ब्रिटिश युग के तमिल अभिलेखों को भी जो तक़रीबन दो सौ साल पुराने हैं।

भले ही मेरी मुख्य दिलचस्पी इतिहास में हो, लेकिन पढ़ना भी मेरा पसन्दीदा शौक़ रहा है। आप मेरी ख़ुशी का अन्दाज़ा नहीं लगा सकते, जब मैंने 200 साल पुरानी मद्रास लिटरेरी सोसाईटी को ढूँढ़ निकाला। यह ईस्ट इंडिया कम्पनी में काम करने वाले लोगों द्वारा 1812 में बनाई गई एक ऐसी लाइब्रेरी है जिसमें 55,000 हज़ार से ज़्यादा किताबें हैं। इस लाइब्रेरी में 400 साल से भी ज़्यादा पुराने समय तक की किताबें हैं और यह एक विरासती इमारत में स्थित है। मैं बीच–बीच में वहाँ जाता रहता हूँ पहले किताबों की इंडेक्सिंग करने और पुस्तक सूची तैयार करने में उनकी मदद के लिए जाता था और अब उनका इंस्ट्राग्राम पेज चलाने में उनकी मदद करता हूँ। मद्रास लिटरेरी सोसाईटी में वॉलंटियर के तौर पर काम करते हुए मुझे इस तरह के साहित्य और पत्रिकाओं के बारे में जानने का मौक़ा मिला जो बहुत समय पहले चलन में रहे थे, उनसे मुझे औपनिवेशिक जीवन की एक झलक देखने को मिली। मैंने चेन्नई के वार्षिक साहित्य उत्सव 'लिट्रेचर फार लाइफ़" के दौरान एमएलएस के स्टाल पर स्वेच्छा से काम किया है। इससे मुझे कई सारे लेखकों से बातचीत करने का मौक़ा मिला जो शायद वैसे नहीं मिल पाता, और साथ ही मुझे यह सीखने का मौक़ा भी मिला कि किसी प्रोग्राम में स्टाल को कैसे चलाया जाता है, एक ऐसा हुनर जिसकी आने वाले जीवन में ज़रूरत पड़ सकती है।

इस सब के दौरान, मुझे अकेले ही कई जगहों पर जाना पड़ा, जिससे जगहों की लोकेशन और भूगोल के मामले में मेरी समझ गहरी और स्पष्ट हुई। मैंने कहीं भी आने-जाने के लिए यातायात के सार्वजनिक साधनों का ही इस्तेमाल करना शुरू किया, जिसका अर्थ था कि मुझे दिशाओं और रास्तों को तेज़ी से समझना था।

क्लास के बाहर मैंने जो भी किया है उसका बड़ा हिस्सा अनौपचारिक ही रहा है (मेरी एपिग्राफ़ी क्लासों को छोड़कर)। हालाँकि उन सबमें एक साझी बात यही रही है कि उन्हें पूरी दिलचस्पी से किया गया था। प्रेरणा बिल्कुल भीतर से थी। पब्लिक ट्रांसपोर्ट से सफ़र करने का फ़ैसला हो सकता है बहुत बड़ा न लगे, लेकिन उससे मैंने सम्प्रेषण, अलग-अलग टिकटों की क़ीमतें, दूरियाँ, समय, समायोजन और स्थिति के अनुसार ढलना सीखा, साथ ही स्वतंत्रता का एक अहसास भी मिला। कक्षा में तो बस एक संरचनात्मक ढाँचे में एक तय समय के भीतर कुछ चीज़ों को सीखना होता है। इंटर्नशिप, स्वैच्छिक कार्य, यहाँ तक कि व्यक्तिगत प्रोजेक्ट, यह सभी, दुनिया को देखने-समझने की एक स्वतंत्र दृष्टि प्रदान करते हैं। अगर आप कक्षा से बाहर निकलते हैं, और ख़ुद ही खोजना शुरू करते हैं, तो फिर सम्भावनाएँ अनन्त हैं।

नन्दन संक्रान्ति कौशिक अड्यार के एक छात्र हैं, जो 'शिष्या' से हाल ही में पास होकर निकले हैं। वे यात्राओं, मुद्राशास्त्र, इतिहास और लेखन में रुचि रखते हैं। अब वे अशोका विश्वविद्यालय से अंडर-ग्रैजुएट की डिग्री हासिल करने के लिए दिल्ली जा रहे हैं। उनसे *nandansankranti.k@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है

अनुवाद : बलराम बोधि **पुनरीक्षण** तथा **कॉपी एडीटिंग** : स्वाति भदौरिया

मिडिल स्कूल शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र

निदेश सोनी

शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र (SPK), बच्चों को नवाचारी तरीक़े से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया करने के लिए एकलव्य संस्था द्वारा स्थानीय समुदाय की भागीदारी से किया जाने वाला एक प्रयास है। यह वह जगह है जहाँ बच्चों के पालक बिना झिझक आ सकते हैं, और केन्द्र प्रबन्धन व संचालन में भागीदारी कर सकते हैं। वे केन्द्र संचालक और शिक्षकों से मिल सकते हैं अपने बच्चों की पढ़ाई के बारे में उनसे बेबाक होकर सवाल पूछ सकते हैं। यहाँ न तो पाठ्यक्रम पूरा करने की दौड़ है, और न ही स्पर्धा का माहौल है। यहाँ हर बच्चा मुख्यधारा की शिक्षा की उन दक्षताओं को अपने तरीक़े से हासिल करने का प्रयास करता है, जो स्कूल की व्यस्त दिनचर्या में छूट जाती हैं।

मध्यप्रदेश के कुछ ज़िलों में एकलव्य संस्था द्वारा संचालित "प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम" (प्राशिका) ने शिक्षा जगत में अपनी एक अमिट छाप छोड़ी है। इस कार्यक्रम के अनुभवों से एक बात जो उभर कर आई वह यह थी कि शिक्षा में बदलाव का प्रयास समुदाय की भागीदारी के बिना अधूरा है। और यहाँ से *शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र* की अवधारणा का उदय हुआ। पिछले दो दशकों से एकलव्य के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में, प्राथमिक शालाओं के बच्चों के लिए SPK कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है।

प्राथमिक शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र

प्राथमिक शाला के आस-पास, गाँव या मोहल्ले में ही स्कूल के समय के पहले या बाद में दो घण्टे के लिए SPK लगाया जाता है। एक केन्द्र में 35 बच्चों को दर्ज किया जाता है। कोशिश यह होती है कि हम सबसे पहले उन बच्चों को लें जिन्हें शैक्षिक सहायता की सबसे ज़्यादा आवश्यकता है और उनमें भी लड़कियों, वंचित जाति या परिवारों के बच्चों को प्राथमिकता दी जाती है। केन्द्र के संचालन के लिए आमतौर पर गाँव के ही किसी व्यक्ति को, समुदाय की सहमति से चुना जाता है और उसे अकादमिक प्रशिक्षण दिया जाता है। केन्द्र संचालक का मानदेय व बच्चों द्वारा उपयोग की जाने वाली सामग्री एकलव्य संस्था मुहैया कराती है। कई जगहों पर केन्द्र की सामग्री और केन्द्र संचालकों के मानदेय का कुछ हिस्सा पालकों द्वारा भी वहन किया जाता है। केन्द्र में पढ़ने वाले बच्चों के पालकों व उस गाँव के लोगों को शामिल करके एक समिति बनाई जाती है जिसकी मासिक बैठक की जाती है। बैठक में केन्द्र के रख-रखाव, प्रबन्धन, बच्चों की पढ़ाई, केन्द्र संचालन में आने वाली दिक़्क़तों, बच्चों की उपस्थिति पर चर्चा व समीक्षा होती है। एक एसोसिएट भी होता है, जो नियमित रूप से केन्द्रों का अवलोकन करता है और केन्द्र संचालकों को अकादमिक सहयोग प्रदान करता है और केन्द्र संचालन के हर पहलू में मदद करता है।

केन्द्र संचालक व एसोसिएट्स के नियमित अकादमिक सपोर्ट के लिए एकलव्य की ओर से पाक्षिक व मासिक बैठकों का आयोजन किया जाता है, जिसमें केन्द्र की अकादमिक योजना, तैयारी व केन्द्र की व्यवस्था/समस्याओं पर बात की जाती है। क्षमतावर्धन के लिए केन्द्र संचालक, एसोसिएट्स व पालक समिति के सदस्यों को दूसरे केन्द्रों/संस्थाओं का भ्रमण/अवलोकन भी कराया जाता है। जहाँ पर वे अलग-अलग प्रयासों को देख सकें और उन्हें अपने केन्द्र पर अपना सकें। इसके इतर केन्द्र संचालकों व एसोसिएट्स के लिए साल में दो बार एक सप्ताह के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की जाती है। केन्द्रों पर बच्चों की दक्षताओं के आकलन के लिए एक सतत आकलन शीट भी होती है, जिसमें समय-समय पर बच्चों के द्वारा प्राप्त कर ली गई दक्षताओं को दर्ज किया जाता है। एक स्तर की तैयारी के बाद बच्चे शाला की मुख्यधारा की शिक्षा में शामिल हो जाते हैं और उनकी जगह पर दूसरे ज़रूरतमन्द बच्चे केन्द्र में शामिल हो जाते हैं।

समय बीतने के साथ SPK का यह स्वरूप महत्त्वपूर्ण होता चला गया है, और एकलव्य में यह कार्यक्रम कई रूपों में जारी है। इस प्रयास को काफ़ी सराहा जाता है, और कुछ संस्थाएँ इस मॉडल का अपने क्षेत्रों में प्रयोग भी कर रही हैं। कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण व सहायक शिक्षण सामग्री आदि का सहयोग देकर एकलव्य इन संस्थाओं में SPK के मॉडल को विकसित व स्थापित करने में सहयोग करता है। शिक्षा के इस प्रयास की सफलता की एक बड़ी वजह इस कार्यक्रम में समुदाय की भागीदारी रही है।

मिडिल स्कूल शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र

वर्ष 2016 में एकलव्य ने मध्यप्रदेश के बैतूल ज़िले के शाहपुर विकासखण्ड के 12 गाँवों में जमशेद जी टाटा ट्रस्ट, मुम्बई के वित्तीय सहयोग से यह प्रयोग शुरू किया था। इसके नाम के

अनुसार इसमें कक्षा 6 से 8 तक के बच्चों के साथ सीखने-सिखाने के प्रयास किए गए हैं। माध्यमिक स्कूलों के बच्चों के साथ किया गया यह प्रयास, प्राथमिक शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र से कई मायनों में अलग है क्योंकि अलग उम्र, अलग कक्षा के चलते उनकी ज़रूरतें अलग हैं। यहाँ पर हम उन बिन्दुओं का ज़िक्र करेंगे, जिससे यह प्रयोग कुछ अलग बन पड़ता है, साथ ही इन बदलावों के क्या आधार रहे हैं, उस पर भी अपनी बात रखेंगे।

केन्द्र संचालक

केन्द्र संचालक वह साथी होता है, जिसका बच्चों के साथ सबसे ज़्यादा जुड़ाव रहता है, वह बच्चों के साथ एक सहजकर्ता की भूमिका में होता है। प्राथमिक SPK में केन्द्र संचालक का चुनाव स्थानीय गाँव से ही करने पर ज़ोर दिया जाता है, पर कक्षा 6 से 8 तक के बच्चों को गणित, भाषा, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान विषय पढ़ने होते हैं इसलिए यह ज़रूरी था कि संचालक साथी इस तरह का हो जो इन विषयों की एक स्तर की समझ रखता हो और साथ ही स्वयं सीखने के लिए तैयार हो। चूँकि ज़्यादातर MS-SPK दूर-दराज के गाँव में खोले जा रहे थे, इसलिए गाँवों में इस काम के लिए उपयुक्त संचालक मिलना मुश्किल हो रहा था। SPK के मॉडल के अनुसार केन्द्र संचालक का चुनाव समुदाय के द्वारा किया जाता है। हमने यह तय किया कि हम आस-पास के गाँवों में भी देखेंगे और दो या तीन लोग चुनकर उनके नाम पालकों की बैठक में रखेंगे, जिनमें से किसी एक साथी को समुदाय के द्वारा केन्द्र संचालन के लिए चुना जा सकता है हमने स्थानीय केन्द्र संचालक के चुनाव में आने वाली समस्या को समुदाय के साथ साझा किया तो वे भी हमारी बात से सहमत हुए और माध्यमिक केन्द्र संचालक का चुनाव इसी प्रकार से किया जाने लगा।

समूह-निर्माण

प्राथमिक SPK में बच्चों को केन्द्र में लाने के पहले सभी बच्चों का गणित व भाषा विषय का बेसलाईन टेस्ट लिया जाता है। इसके परिणामों का विश्लेषण करने के बाद एक कक्षा में कुल 35 बच्चों को दर्ज किया जाता है। बच्चों की दक्षताओं के आधार पर उन्हें तीन समूहों में बाँटा जाता है। 'ए' समूह के बच्चे ज़्यादा दक्ष होते हैं, उनसे कम दक्षताओं के स्तर पर 'बी' समूह और 'सी' समूह के बच्चे निचले स्तर पर होते हैं। समय-समय पर बच्चों का मूल्यांकन किया जाता है और उनके द्वारा प्राप्त दक्षताओं को सतत मूल्यांकन शीट में दर्ज किया जाता है और उसके आधार पर बच्चे 'सी' समूह से 'बी' और फिर 'ए' समूह में जाते है।

समूह-आवंटन के दौरान केवल बच्चों की दक्षताओं को देखा जाता है, न कि उनकी कक्षा या उम्र को। MS-SPK टीम में काम करने वाले साथियों को ऐसा करना उपयुक्त नहीं लग रहा था, टीम को यह लगता था कि हम समूहों के नाम भले ही कुछ भी रख दें, पर थोड़े समय बाद बच्चों को यह पता लग ही जाएगा कि वे दक्षता के आधार समूह में हैं। इस तरह बाँटने से, कम दक्षता वाले बच्चों के आत्मविश्वास पर असर पड़ता है। उनमें हीन भावना आती है और आत्मविश्वास कम होता है ख़ासकर तब जब कोई बच्चा तीसरी, चौथी या पाँचवी कक्षा में हो और दक्षताओं के आधार पर उसे 'सी' समूह में रखा जाए। इसलिए इन दक्षताओं का निर्धारण केन्द्र संचालक द्वारा कक्षा-शिक्षण के दौरान किया जाता है जिसे ज़रूरत के अनुसार बदला भी जा सकता है।

हमारा एक दीर्घ-कालीन लक्ष्य यह रहा है कि हम केन्द्र संचालक के क्षमतावर्धन के लिए लगातार प्रयास करेंगे जिससे उनकी स्वायत्तता बनी रहे, और वे अपनी कक्षा में बच्चों के लिए बेहतर निर्णय ले सकें।

विषयों के बारे में हमारी सोच

गणित

एनसीएफ़ 2005 कहता है कि, ''सभी बच्चे गणित सीख सकते हैं, और सभी बच्चों को गणित सीखने की ज़रूरत है।'' हमने इसी बात को आधार वाक्य माना है। गणित बच्चों के लिए महज एक विषय न हो, बच्चे तर्क लगाने और अपने दैनिक जीवन की समस्याओं को सुलझाने में भी गणित के तरीक़ों का प्रयोग करें। इन कौशलों को प्राप्त करने के लिए यह ज़रूरी है कि बच्चों में संख्या-बोध (जिसमें संख्या व संक्रियाओं की समझ निहित है) हो। इसलिए हम इसके लिए कार्य करते हैं। इसके अलावा हमने कुछ और अवधारणाओं को भी चुना जिनमें भिन्न, प्रतिशत, दशमलव, ऋणात्मक संख्याएँ, क्षेत्रमिति, घातांक आदि भी थे।

इन अवधारणाओं पर काम शुरू करने से पहले हमने बच्चों का एक बेसलाईन टेस्ट भी लिया, और उन क्षेत्रों की पहचान की जहाँ पर हमें बच्चों के साथ काम करने की सबसे ज़्यादा ज़रूरत थी। इन दक्षताओं के बिना गणित की अन्य क्षमताओं पर काम करना सम्भव नहीं था। मेरी नज़र में गणित विषय की अवधारणाएँ प्रकृति में श्रेणीबद्ध होती हैं, हमें इसमें बढ़ने के लिए एक क्रम में चलना होता है।

भाषा

भाषा सभी विषयों क़ा आधार है। इसके केन्द्र में होता है पढ़ना, लिखना व अभिव्यक्त करना। पढ़ने से आशय है समझकर पढ़ना (reading with comprehension), लिखने के कौशल को हम शुरुआत में तरजीह नहीं देते हैं, ज़्यादा ध्यान पढ़ने व

अभिव्यक्त करने पर होता है। हालाँकि लेखन भी अभिव्यक्ति का एक माध्यम है, पर पहले हम मौखिक अभिव्यक्ति पर ज़्यादा ध्यान देते हैं। इसके लिए बाल-पुस्तकालय और इसकी किताबें हमारी सबसे बड़ी ताक़त हैं, इन किताबों को पढ़ना और इनके साथ तरह-तरह की गतिविधियाँ जैसे स्वतंत्र पठन, टोलियों में पठन, कहानी सुनाना, कहानी पर नाटक बनाना, अपनी दिनचर्या को लिखना, अपने आस-पास की ख़बरों को इकट्ठा करके बाल-अख़बार बनाना, एक-दूसरे को पत्र लिखना, कविता-गायन आदि के माध्यम से हम भाषा-शिक्षण पर काम करते हैं। अक्षर या शब्दों के साथ भाषा-शिक्षण कराने के पारम्परिक तरीक़े की जगह सन्दर्भ आधारित भाषा-शिक्षण पर हमारा गहरा विश्वास है।

विज्ञान

बच्चों को केवल निष्कर्ष बताकर उसे याद करने के लिए कहने के बजाय उन्हें बातों को समझने और जो समझा है उसे दूसरों के साथ साझा करने, अपनी राय रखने, प्रयोग करने, जाँच करने और स्वयं उसका निष्कर्ष निकालने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। एकलव्य का विज्ञान-शिक्षा में एक अभिनव प्रयोग होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम रहा है, इस दौरान एकलव्य ने कक्षा 6 से 8 के लिए *बाल वैज्ञानिक* नामक तीन पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया था। MS-SPK कार्यक्रम में हम इन पुस्तकों को आधार मानकर बच्चों के साथ काम करते हैं।

सामाजिक विज्ञान

हम बच्चों के स्थानीय सन्दर्भों और उनके परिवेश से जुड़े कुछ छोटे-छोटे प्रोजेक्ट का चुनाव करते हैं, जैसे तेंदुपत्ता का संकलन और भण्डारण, ईंट बनाने की प्रक्रिया, गाँव में जलस्रोतों का सर्वे आदिI इन प्रोजेक्ट के माध्यम से हम बच्चों को समझने, विश्लेषण करने और तुलना करने जैसी क्षमताओं को हासिल करने के मौक़े उपलब्ध कराते हैं। परिवेश में होने वाली घटनाओं और उसका सम्बन्ध उनसे किस तरह से है, और उसका उन पर क्या प्रभाव पड़ता है यह जानने और विश्लेषण करने में यह प्रोजेक्ट बच्चों की मदद करते हैं। इसके अलावा वे इस बारे में सोचना, समझना, चर्चा करना और बेहतर तरीक़े से अपनी बात रखना भी सीखते हैं। कक्षा के बाहर किए जाने वाले इन प्रयोगों ने बच्चों की समझ को बढ़ाने में बड़ा योगदान दिया है।

सामाजिक मुद्दों पर चर्चाएँ

मासिक बैठक के रूप में हमने एक नई परिपाटी बनाई जिसमें MS-SPK टीम में काम करने वाले सभी साथी हर माह के अन्तिम रविवार को साथ बैठते हैं और किसी ख़ास विषय पर कोई पर्चा पढ़ते हैं या फ़िल्म देखते हैं और फिर इस पर चर्चा करते हैं। इन चर्चाओं में जेंडर, जाति, शोषण, भेदभाव, समानता, आरक्षण और हमारे आस-पास जो घट रहा है, उस पर बात करते हैं। इन चर्चाओं ने हमारे कार्यकर्ताओं के बीच में एक सकारात्मक सोच विकसित करने में मदद की है। कुछ समय के प्रयासों के बाद टीम के सदस्य पालकों के साथ बैठकों में इन मुददों को लेकर बात कर पाते हैं और बदलावों को लागू कर पाते हैं। इसकी एक बानगी है कि अब कोई भी पालक-बैठक, किसी भी धार्मिक स्थल पर नहीं की जाती है, क्योंकि इससे मासिक धर्म के दौरान महिलाओं को बैठक में शामिल होने का मौक़ा नहीं मिलता है। वहीं मासिक धर्म, महिलाओं के लिए कोई अभिशाप नहीं बल्कि एक शारीरिक प्रक्रिया है, इस तथ्य को स्थापित करने में हम कुछ हद तक सफल हुए हैं। और कम-से-कम टीम के बीच में तो इससे जुड़ी भ्रान्तियों को दूर कर पाए हैं, पालकों के बीच प्रयास जारी है। इसी तरह से किसी के भोजन, जाति, रंग, शारीरिक कमी या धर्म के आधार पर उसके साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता है, इस तथ्य को हम कई तरीक़ों से बातचीत में शामिल कर पाए हैं। कुछ छोटी डाक्यूमेंट्री फ़िल्में इसमें बहुत मददगार रही हैं जैसे यूट्यूब पर उपलब्ध "लड्डु" एक सुन्दर प्रयास है। इनमें से कई चुनिन्दा चर्चाओं को हम बच्चों के बीच भी ले गए, जैसे Good Touch- Bad Touch, एक-दूसरे के भोजन, रहन-सहन के तरीक़ों और जाति के आधार पर होने वाले भेदभाव।

इन प्रयासों के लिए बहुत तैयारी और समय की दरकार होती है, हमने अपनी ओर से बेहतर करने का प्रयास किया है। इन मुद्दों पर गाँव के लोगों को शिक्षित करने से सरोकार रखने वाले स्थानीय युवाओं को हम लगातार इन बैठकों में आमंत्रित करते हैं, और उन्हें इन प्रयासों से जोड़ने की कोशिश की है। दो-तीन वर्षों के भीतर हम लगभग पचास युवाओं को तैयार कर पाएँ हैं जो गाँवों में जागरूकता लाने के प्रयास में अलग-अलग तरीक़ों से हमारी मदद कर रहे हैं।

MS-SPK किसी भी तरह से सरकारी स्कूलों का विकल्प नहीं है, यह स्थानीय समुदाय के साथ मिलकर किया गया एक प्रयास है, जो स्कूल की मुख्यधारा की शिक्षा में बच्चों व पालकों को आने वाली समस्याओं को दूर करने में मदद करता है। ग्रामीण समुदाय के साथ किए जाने वाले संवाद व चर्चाओं से गाँव में शैक्षिक वातावरण निर्मित करने में मदद मिलती है और साथ ही इस तरह के प्रयासों को भी बल मिलता है।

निदेश सोनी एकलव्य संस्था में पिछले 12 वर्षों से कार्यरत हैं। वे गणित-शिक्षण में रूचि रखते हैं। वर्तमान में वे एकलव्य के शाहपुर केन्द्र पर कार्यरत हैं। उनसे *nideshsoni@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र : मेरे अनुभव

नीलेश मालवीय

ग्रामीण क्षेत्र में पढ़ने और लिखने की संस्कृति विकसित करने हेतु हमने साढ़े तीन साल तक तामिया विकासखण्ड, जिला छिन्दवाड़ा, मध्य प्रदेश में समुदाय के साथ काम किया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हमने बच्चों को बाल शिक्षा साहित्य तथा अन्य शिक्षण-सामग्री उपलब्ध करवाई। यह सुनिश्चित किया कि गाँव के पढ़े-लिखे युवक-युवती बच्चों की मदद कर सकें। पालक अपने बच्चों की उचित परवरिश कर सकें और उन्हें नियमित रूप से स्कूल भेज पाएँ। साथ ही शासकीय स्कूलों में दोस्ताना माहौल बनाने की कोशिश की, जिससे कि बच्चों को स्कूल में लिखने-पढ़ने से डर न लगे और वे आत्मविश्वास एवं उत्साह के साथ स्कूल की गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी कर सकें। इस तरह समुदाय और शिक्षकों के बीच सम्बन्ध स्थापित हुए। गाँव के युवाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के मायने क्या हैं, यह समझ बनाने हेतु तैयार किया गया, ताकि वे ख़ुद सीख सकें, साथ ही अपने छोटे-भाई बहन, अपने गाँव के बच्चों को भी सिखा सकें।

शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र क्या हैं?

शासकीय प्राथमिक शाला में पढ़ने वाले बच्चों की सहायता के लिए एकलव्य संस्था ने समुदाय के साथ मिलकर 34 गाँवों में 50 'शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र' बनाए। कुछ केन्द्र गाँव के घरों में संचालित होते थे, और कुछ केन्द्र स्कूल में संचालित होते थे। यह केन्द्र, स्कूल समय के पहले 2 घण्टे चलते थे। गाँव/ मोहल्ले की प्राथमिक शाला में पढ़ने वाले लगभग 30 बच्चे लिए जाते थे। इन 2 घण्टों में बच्चों को भाषा विषय के अन्तर्गत सुनना, बोलना, पढ़ना-लिखना तथा गणित में संख्या की समझ, जोड़, घटा, गुणा, भाग, भिन्न आदि कौशलों में दक्ष करने का काम किया जाता था।

केन्द्र संचालक एवं समिति

शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र ठीक तरह से काम करें इस हेतु समुदाय के कुछ लोगों ने इसकी ज़िम्मेदारी ली थी। इसके लिए हरेक केन्द्र पर एक समिति बनाई गई थी और प्रत्येक समिति में 7 सदस्य थे। समिति और पालक मिलकर केन्द्र संचालकों का चयन करते थे। चयन के दौरान समिति के पास गाँव के पढ़े-लिखे युवाओं के नाम आते, जिन पर समिति के सदस्य आपस में बात करते। केन्द्र संचालकों का चयन उनके व्यवहार, उनकी, शैक्षिक योग्यता, बच्चों के साथ काम करने की क्षमता आदि के आधार पर किया जाता था। चयन हो जाने के बाद संचालक को उसकी ज़िम्मेदारियों, वेतन एवं मासिक गोष्ठी/ प्रशिक्षण में भागीदारी के बारे में बताया जाता। प्रत्येक माह पालक-बैठक का आयोजन किया जाता था। जिसमें केन्द्र की उपलब्धि, समस्याएँ और केन्द्र में किए गए काम की समीक्षा करना समिति की ज़िम्मेदारी थी।

प्रशिक्षण

एकलव्य ने तामिया में केन्द्र संचालकों के लिए एक माह के प्रशिक्षण का आयोजन किया। इसमें संचालकों को शैक्षिक साहित्य पढ़ने और उस पर बात करने, भाषा और गणित में बुनियादी दक्षताओं के लिए एनसीईआरटी की पुस्तकों से मदद लेने, खेल द्वारा शिक्षण गतिविधियों में प्रतिभाग करने, शिक्षण-डायरी लेखन एवं अपने काम की योजना बनाने आदि पर प्रशिक्षित किया गया।

प्रशिक्षण के दौरान प्रति सप्ताह शनिवार के दिन स्कूल में बैठक की गई। इसमें पिछले सप्ताह किए गए काम का विवरण पढ़ना, शैक्षिक लेखों को पढ़ना आदि गतिविधियाँ की गईं। इनमें स्कूल के शिक्षक भी प्रतिभाग करते थे और अपने अनुभव को साझा करते थे। अगले सप्ताह की योजना बनाई जाती थी। गतिविधियों को करके देखा जाता था। शिक्षकों की मदद से प्रतिभागियों द्वारा कुछ व्यावहारिक गतिविधियाँ भी कराई जाती थीं।

शिक्षण का तरीका

केन्द्र संचालक, बच्चों के स्तर को ध्यान में रखकर योजना बनाता था। वह यह तय करता था कि कौन-सी अवधारणा को विकसित करना है, उसके क्या उद्देश्य होंगे, इस उददेश्य के लिए कौन-सी गतिविधियाँ/खेल उपयुक्त होंगे और इसके बाद किस तरह के अभ्यास दिए जाएँगे। अन्य सम्बन्धित मुद्दे भी उसके द्वारा तय किए जाते थे। केन्द्र संचालक इस बात पर नज़र रखते कि बच्चों ने क्या किया, क्या सीखे और इसके बाद मूल्यांकन प्रपत्र में तारीख़ दर्ज करते। बच्चों की गलतियाँ भी मूल्यांकन रजिस्टर में अंकित की जातीं और अगले दिन वे बच्चे के साथ समय बिताने और सम्बन्धित गतिविधियों के द्वारा अवधारणा को सिखाने के लिए तैयार रहते।

केन्द्र में कक्षा पहली से पाँचवी तक के सभी 20-25 बच्चों को एक साथ बैठाया जाता था। पहला एक घण्टा भाषा और फिर एक घण्टा गणित विषय के लिए आवंटित था। कभी-कभी एक दिन पूरे दो घण्टे गणित और दूसरे दिन पूरे दो घण्टे भाषा पढ़ाई जाती थी। इस तरह से बच्चों को भाषा और गणित की बुनियादी दक्षताएँ प्राप्त करने में मदद करने का प्रयास किया जाता था।

बच्चों को बुनियादी दक्षताओं में कुशल बनाने के लिए भाषा में एकलव्य द्वारा प्रकाशित *'पढ़ो-लिखो मज़ा करो'* किताब को अपनाया गया था और गणित में एनसीईआरटी की पुस्तक को अपनाया गया था।

गतिविधियों के उदाहरण

यह तय किया कि भाषायी कौशल-विकास के लिए शुरुआत में प्रति सप्ताह बच्चों के अपने परिवेश के पाँच आसान और परिचित शब्द लिए जाएँगे। जैसे कुछ शब्द हो सकते हैं – *कप, बस, नल, माला, एक* आदि। बच्चों की इन शब्दों और उनकी ध्वनियों से पहचान करवाई जाएगी और उनसे नए शब्द बनाए जाएँगे। इसके बाद सभी बच्चों को एक बड़े गोल घेरे में बैठाकर शुरू के 10 मिनट इन शब्दों से बनने वाली कोई एक कहानी सुनाई जाती। इसके बाद बोर्ड पर इस कहानी को लिखा और पढ़ा जाता। इसके बाद अलग-अलग स्तर के बच्चों को छोटे-छोटे समूह में बैठाकर उनके पठन स्तर के हिसाब से कहानी में आए शब्दों में निहित ध्वनियों को पहचानने, व अक्षर और मात्रा जोड़कर शब्द बनवाए जाते। यह सब कुछ गतिविधियों के माध्यम से, कई तरह की शिक्षण-सामग्री का उपयोग करते हुए, खेल के माध्यम से सिखाया जाता ताकि बच्चे शब्दों की पहचान, उनको पढ़ना, लिखना तथा उनमें निहित ध्वनियों की पहचान कर पाएँ।

कौन आया कौन गया का खेल : इसमें सभी बच्चों को कोई तीन शब्द कार्ड दिखाए जाते हैं। जैसे कप, बस, नल दिखा दिए। इसके बाद कोई एक बच्चा बाहर जाता है। इस बीच दिखाए गए तीन कार्ड में से कोई एक कार्ड बदलकर उसकी जगह नया कार्ड रख दिया जाता है। जैसे 'बस' को बदलकर 'एक' रख दिया। बाहर गया बच्चा अन्दर आता है और देखता है कि कौन-सा कार्ड गया और कौन-सा नया कार्ड आ गया। फिर वह बताता है कि 'बस' वाला कार्ड यहाँ से चला गया है और 'एक' आ गया है।

इसी तरह से चित्र कार्डों पर दिए गए नामों को अक्षर और मात्रा-कार्ड जोड़कर बनाया जाता है। उदाहरण के तौर पर 'कप'। फिर जिन्होंने नाम बनाया है, वे उस नाम को पढ़कर बताते हैं। अब बाकी बच्चों को 'कप' में जितने अक्षर हैं उतनी बार ताली बजानी होती है। 'कप' हिन्दी के दो अक्षरों से मिलकर बना है, यानी दो बार ताली बजेगी।

बारी-बारी से सभी शब्द लिए जाते हैं, और उनमें जितने अक्षर हैं बच्चे उतनी तालियाँ बजाते हैं। फिर अगली गतिविधि में बच्चों से शब्द के आख़िरी अक्षर को पहचानने को कहा जाता है, और फिर उस अक्षर से बनने वाले नए शब्द बताने को कहा जाता है। जैसे 'कप' में आख़िरी अक्षर है 'प' तो बच्चों को 'प' ध्वनि से बनने वाले शब्द बनाने होंगे जैसे 'पानी' या 'पतंग'। इस गतिविधि में उनके सहपाठियों के नाम के अक्षरों और मात्राओं को भी इस्तेमाल करते हुए नए शब्द बनाने और ज़ोर-ज़ोर से पढ़ने को भी शामिल किया जा सकता है। जिन बच्चों को शब्द पढ़ना और ध्वनियाँ पहचानना आता है, उन बच्चों को छोटे-छोटे वाक्य लिखने, चित्रों के बारे में बोलने और उसके अगले चरण में कहानी के पात्रों और घटनाओं के बारे में लिखने की गतिविधि करवाई जाती है। गतिविधि के बाद संचालक बच्चों के काम को जाँचते हैं। यदि बच्चे को कुछ समझने में कठिनाई महसूस हो रही है या उसे समझ नहीं आया है तो संचालक आकलन रजिस्टर में यह दर्ज कर देते। अगली गतिविधि की योजना बच्चे को उस अवधारणा पर समझ बनाने में मदद करने के आधार पर बनाई जाती।

गणित की गतिविधियाँ

मात्रा की समझ और ठोस वस्तु से जोड़-घटा करने का अभ्यास

मात्रा की अवधारणा को समझाने के लिए सभी बच्चों को बड़े गोल घेरे में बैठाकर 100 मोतियों को गिनवाया जाता है। सभी बच्चे बारी-बारी से आकर गिनते हैं। छोटे बच्चे 1-1 करके गिनते हैं। बड़े बच्चे 2-2, 5-5, 10-10 के समूह में गिनते हैं। इस तरह गिनने के तरीक़े से वे एक-दूसरे से काफ़ी कुछ सीखते हैं।

एक बच्चे को 50 मोती दिए जाते हैं। फिर उसको बाहर भेज दिया जाता है। उसके जाने के बाद कुछ मोतियों को निकालकर एक कटोरी के अन्दर छिपा दिया जाता है। बाहर भेजे गए बच्चे को पुन: बुलाया जाता है। वह कटोरी के बाहर पड़े मोतियों को गिनकर यह बताता है कि कटोरी के अन्दर कितने मोती हैं।

इसी तरह तीलियों के बण्डल से स्थानीय मान, इकाई, दहाई, सैकड़ा की समझ बनाई जाती है। तीलियों के बण्डल को सामने रखकर कोई एक संख्या बोलकर बण्डल से उतनी तीलियाँ देने को कहा जाता है। जैसे अगर हम 45 तीलियाँ माँगते हैं तो टीम 4 बण्डल और 5 तीलियाँ देगी। इसके बाद स्थानीय मान कार्ड से उन संख्याओं को बनाया जाता है और बोर्ड पर लिखा जाता है। फिर किन्हीं दो संख्याओं में बड़ी संख्या और छोटी संख्या के बारे में पूछा जाता है। और वह क्यों बड़ी या छोटी है इसका कारण बताने को भी कहा जाता है।

अन्य गतिविधियाँ

समय-समय पर बाल-सभा, बाल-अख़बार, चित्र बनाने का काम किया जाता था जिसे बच्चों की फाइल में लगाया जाता था। इन सभी दस्तावेज़ों और की गई गतिविधियों के आधार पर शिक्षक अपने नज़रिए से यह तय करता था कि बच्चे ने पूरे साल में कौन-सी दक्षताएँ प्राप्त कीं। इसको ध्यान में रखकर प्राथमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के पालकों एवं शिक्षकों की सूचना के लिए एक रिपोर्ट कार्ड बनाया जाता था।

शैक्षणिक सामग्री के रूप में प्रत्येक केन्द्र में बच्चों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर शब्द-कार्ड, मात्रा-कार्ड, वाक्य-कार्ड, कविता-पोस्टर, कहानी-पोस्टर, कविता-कहानी की वाक्य पट्टी और बच्चों के द्वारा बनाए गए चित्र, स्थानीय घटनाओं का संकलन, बाल-साहित्य, बच्चों के द्वारा सुनाई गई कहानियों का संकलन, स्थानीय खेल, पहेलियों का संग्रह, लोक साहित्य, एकलव्य द्वारा प्रकाशित *'पढ़ो-लिखो मज़ा करो'* पुस्तक, *ख़ुशी-ख़ुशी* पाठ्यपुस्तक आदि सामग्री पर्याप्त मात्रा में दी गई थीं।

गणित सिखाने के लिए और मात्रा की समझ हेतु अबैकस, गिनमाला, संख्या-कार्ड, स्थानीय मान कार्ड, एनसीईआरटी की किताब, *ख़ुशी-ख़ुशी* किताब, ठोस वस्तु जैसे कंकड़, माचिस की तीली आदि सामग्री उपलब्ध कराई गई थी।

पुस्तकालय

गाँव में लिखने-पढ़ने की संस्कृति का विकास हो, इस हेतु प्रत्येक केन्द्र में एक पुस्तकालय शुरू किया गया और प्रत्येक को लगभग 200 किताबें दी गईं। बच्चे केन्द्र से किताबें अपने घर लेकर जाते थे, पढ़ते थे और घर के बड़े-बुज़ुर्ग, भाई-बहन सभी लोगों को पढ़ने के लिए देते थे। बच्चों को घर में अपना पुस्तकालय बनाने के लिए भी प्रोत्साहित किया गया। एकलव्य पुस्तकालय की पुस्तकें गाँव में ले जाई गईं। वहाँ पालक अपने बच्चों के साथ आए और 3 किताबें पसन्द कीं। इस तरह से उन्हें अपने घरों में पुस्तकालय बनाने में मदद की गई।

केन्द्र संचालक केन्द्र में रखी किताबों में से बच्चों को कहानी पढ़कर सुनाते थे। बच्चों को किताबों से पढ़ने, दूसरों को भी पढ़ाने, चित्रों पर बातचीत करने, कहानी में दी गई घटनाओं को लिखने में मदद की जाती थी। एक बार तो कठपुतलियों के माध्यम से एक कहानी भी प्रस्तुत की गई। बच्चों के द्वारा बनाए हुए चित्रों को और लिखी हुई कहानियों को दीवार पर लगाया जाता था ताकि बच्चे उन चित्रों को देखें, कहानी तथा घटनाओं को पढ़ें। बच्चों की लिखी हुई कहानियों, चित्रों, घटनाओं को इकट्ठा करके माह में एक बार अख़बार बनाया जाता था। पालकों द्वारा सुनाई गई स्थानीय कहानियों को भी बच्चे सुनते थे। यह स्थानीय सन्दर्भ बच्चों को पढ़ना सीखने में काफ़ी मदद करता था।

आस-पास के पेड़-पौधों के बारे में जानकारी इकट्ठी करना

बच्चों से उनके आस-पास उगने वाले पेड़-पौधों के नाम और उनके उपयोग लिखने को कहा गया। मासिक पालक बैठक में पालकों को बच्चों के द्वारा लिखे गए लेख पढ़कर सुनाए गए। बच्चों ने पेड़-पौधों के औषधीय गुणों के बारे में बहुत अच्छा लिखा। इससे उनको अपनी प्रकृति को जानने-समझने और पेड़-पौधों के उपयोग से परिचित होने का मौक़ा मिला। पालकों ने भी इन पेड़-पौधों के बारे में अपनी जानकारी साझा की और लेख को अच्छा बनाया। इसके बाद इन लेखों को एकलव्य द्वारा प्रकाशित चकमक पत्रिका में प्रकाशित किया गया और जिन बच्चों के लेख छपे, उन्हें चकमक पत्रिका भेंट की गई।

एक्सपोज़र विज़िट

समय-समय पर प्रत्येक केन्द्र से 3 पालकों एवं कक्षा तीसरी से पाँचवी तक के 3 बच्चों को आस-पास संचालित उद्योग, पुलिस थाना, थर्मल पावर प्लांट, रेलवे स्टेशन, साइंस सेंटर, संग्रहालय, प्रिंटिंग प्रेस, पार्क, जिम, वॉटर फिल्टर प्लांट आदि के अवलोकन के लिए एक्सपोजर विज़िट पर ले जाया गया। उन्होंने स्थानीय क़ानून, पुरानी परम्पराओं और बिजली बनाने के तरीक़े के बारे में भी जाना। विज़िट से बच्चों को अपने आस-पास की चीज़ों को जानने-समझने का मौक़ा मिला। बच्चों ने विज़िट के अपने अनुभवों को लिखित रूप से व्यक्त किया।

बाल-मेला का आयोजन

पूरे साल बच्चों ने क्या सीखा इस बात का प्रदर्शन करने के लिए बाल-मेलों का आयोजन किया गया। बाल-मेलों की गतिविधियों में क्विज़, बच्चों के द्वारा बनाए गए चित्रों, उनके द्वारा लिखी गई कहानियों, मिट्टी के खिलौनों की प्रदर्शनी शामिल थी। बच्चों को अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का मौक़ा देने के लिए कुर्सी दौड़, खो-खो, कबड्डी आदि खेलों का आयोजन किया गया।

गणित दक्षता का प्रदर्शन

बाल-मेला में एक स्थानीय बाज़ार लगाया गया। नकली नोटों के माध्यम से बच्चों ने असली चीज़ों को *'बेचा'* और लोगों ने *'ख़रीदा'*। इस बिक्री के दौरान बच्चों ने दुकान का संचालन किया एवं पैसे का लेन-देन किया।

बच्चों और पालकों ने अपनी ऊँचाई नापी, वज़न तौला और

अपना बॉडी मॉस इन्डेक्स निकाला। किसका वज़न अधिक है, किसका कम है और किसका बहुत कम है इसका पता लगाया।

समुदाय की भागीदारी

प्रत्येक माह, समुदाय के साथ एक बैठक का आयोजन किया जाता जो कि शाम के वक़्त की जाती थी। बैठक में पालकों, जनप्रतिनिधियों, केन्द्र संचालक एवं बच्चे प्रतिभाग करते। बैठक में पालक बच्चों के द्वारा किए गए काम को देखते और यह भी समझते कि बच्चे गतिविधियों में प्रतिभाग करने में कितना नियमित थे और उन्होंने क्या सीखा। 50 प्रतिशत से कम उपस्थिति वाले बच्चों के नाम पालकों को बताए जाते और पालकों और बच्चों के सहयोग से उपस्थिति बढ़ाने का प्रयास किया जाता था।

स्कूल के साथ सम्बन्ध

प्रत्येक सप्ताह अलग-अलग प्राथमिक शालाओं में केन्द्र संचालकों की बैठक का आयोजन किया जाता था। बैठक में शासकीय स्कूल के शिक्षक भी शामिल होते। केन्द्र संचालक पिछले एक सप्ताह के काम की रिपोर्ट सभी के साथ साझा करते। अगले एक सप्ताह की योजना भी बनाई जाती। ऐसी ही एक बैठक में गणित के पर्चे को हल किया गया। किसी में एक शिक्षा-साहित्य के कुछ पन्नों को पढ़कर चर्चा की गई। इन सबमें शिक्षक भी शामिल होते थे। वे भी अपना अनुभव साझा करते।

जो विद्यार्थी-शिक्षक डीएलएड, बीएलएड का कोर्स कर रहे होते थे, वे समय-समय पर आकर इन केन्द्रों का अवलोकन करते थे और जो सिद्धान्त उन लोगों ने पढ़े थे, यहाँ उन सिद्धान्तों को क्रियान्वित होते हुए देखकर उन्हें ख़ुशी होती थी।

कुछ शैक्षिक संस्थान भी एक्सपोज़र विज़िट के लिए आते थे और इस तरह के प्रयास की सराहना करते और इससे सीखते थे।

पालकों की विज़िट

जो केन्द्र ठीक से नहीं चल रहे थे उन केन्द्रों के पालकों को ऐसे केन्द्रों का विज़िट करवाया जाता था, जो अच्छी तरह चल रहे थे। ताकि वे बच्चों के साथ हो रहे काम, पालकों की भागीदारी, बच्चों की उपस्थिति, कक्षा की साज-सज्जा, बच्चों के सीखने का स्तर, बच्चों के पोर्टफ़ोलियो को देख पाएँ। वे वापस जाकर अपने गाँव के केन्द्र के बेहतर संचालन हेतु प्रयास करते थे। संचालक को भी उसकी ज़िम्मेदारी का निर्वहन पूरी निष्ठा के साथ करने के लिए कहते थे। पालकों की सक्रिय भूमिका हेतु उन्हें विभिन्न संस्थानों का भी एक्सपोज़र विज़िट करवाया जाता था।

उपलब्धियों पर नज़र

शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र से शासकीय स्कूलों के बच्चों में क्या बदलाव आया, यह जानने के लिए शुरू में बेसलाईन, कार्यक्रम के मध्य में मिडलाईन और कार्यक्रम के अन्त में एंडलाईन टेस्ट किया गया। कक्षा-1 के स्तर का भाषा और गणित का पर्चा तीसरी कक्षा के बच्चे से करवाया गया और कक्षा तीसरी के स्तर में हो रहे बदलावों को देखा गया।

तामिया में 35 प्राथमिक शालाओं में 50 केन्द्रों को स्थापित किया गया। तीन साल में लगभग 85 युवाओं को प्रशिक्षित किया गया और वे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के बारे में अपनी समझ विकसित कर पाए। शासकीय स्कूलों के शिक्षकों ने भी अपने स्कूलों के बच्चों को सिखाने में इन युवाओं की मदद ली और बदले में कई सारी दक्षताओं को सीखने में भी उनका सहयोग किया। इस तरह गाँव में युवाओं का एक अच्छा स्रोत समूह बनकर तैयार हुआ जो गाँव के बच्चों की मदद करता था स्वयं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के मायने समझता था और जिसने अपने परिवार के, अपने मोहल्ले के बच्चों को अच्छी शिक्षा देकर मुख्यधारा से जोड़ने का काम किया।

नीलेश कुमार मालवीय एकलव्य होशंगाबाद में कार्यरत हैं। उन्हें प्राथमिक शाला और समुदाय के साथ काम करने का एक लम्बा अनुभव है। उनसे *nileshmalviya76@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

बच्चों के खेल : हिमालय के एक गाँव की यादें

निमरत खण्डपुर

सिक्किम के एक गाँव ग्नथांग में बच्चे जिस तरह के खेल खेलते हैं, इस लेख में मैंने उसकी कुछ झलकियाँ प्रस्तुत की हैं। भूटान में दाख़िल होने से पहले यह गाँव सिल्क रूट के व्यापारियों का आख़िरी पड़ाव हुआ करता था। हालाँकि अब काफ़ी लोग गाँव से बाहर चले गए हैं और सैलानियों का आना-जाना भी काफ़ी बढ़ गया है, फिर भी ग्नथांग में जीवन आज भी कठिन है। समुद्र तल से 13800 फ़ीट की ऊँचाई पर स्थित ग्नथांग का मौसम काफ़ी डरावना है, ज़्यादातर समय बर्फ़बारी और बारिश होती रहती है, धूप तो बस कुछ महीने ही देखने को मिलती है। कई बार बर्फ़ और खिसकती हुई चट्टानें गाँव को बाहरी दुनिया से पूरी तरह काट देती हैं; और फिर कुछ दिन ऐसे भी होते हैं जब उस नीरसता से गाँव को उबारने के लिए धूप खिलती है। जिन दिनों मैं ग्नथांग में थी वहाँ एक मिडिल स्कूल हुआ करता था लेकिन शहरों की ओर प्रवासन के कारण अब वह लगभग बन्द हो चुका है।

हालाँकि गाँव के कुछ घरों में टीवी थे, लेकिन बिजली वहाँ कभी-कभार ही आती थी और इतनी ऊँचाई पर बसे उस गाँव का कठोर मौसम भी डिश को रास नहीं आता था, सो गाँव के बच्चे टीवी देखने से काफ़ी हद तक बचे हुए थे। लेकिन रेडियो ने उन्हें हिन्दी गानों से जोड़ दिया था। एक दिन सैर करते हुए घाटी के नज़ारों का आनन्द लेने के लिए जब मैं एक जगह रुकी हुई थी, मुझे औरतों और बच्चों की एक कतार नज़र आई जो धीरे-धीरे ढलान पर चढ़ रहे थे, सूखी लकड़ी से भरी टोकरियाँ उनकी पीठों पर लदी थी। मैं उनके गीत को सुन सकती थी, हालाँकि बोल कुछ समझ में नहीं आ रहे थे, लेकिन उसमें दिल को खींच लेने वाली एक ख़ूबसूरती थी, जो दरख़्तों पर झूलती हुई-सी महसूस होती थी। जब वह नज़दीक आए तो पता चला कि वह तो हिन्दी फ़िल्म का एक मशहूर गाना गा रहे थे, 'परदेसी परदेसी जाना नहीं, मुझे छोड़ के...।'

किसी रविवार वाले दिन जब धूप खिली होती, तो गाँव की किसी-न-किसी गली में अक्सर एक तम्बोला पार्टी की जाती, जो बड़ों के लिए होती थी। जिसकी तैयारी बस आनन-फानन में ही हो जाती। लोग छतों पर या फिर बाहर खुले में धूप वाली साईड में जहाँ से बर्फ़ पिघल चुकी होती, या सुखाने के लिए रखी याक की किसी खाल पर पालथी मारकर बैठ जाते। यहाँ तक कि बुज़ुर्ग भी धूप में बैठकर ताश खेलते थे। लेकिन अगर सूरज कोहरे या बादलों के पीछे छुप जाता, और कुछ भी करने को न बचता तो फिर वह शराब की एक या दो लाईसैंसशुदा दुकानों पर नज़र आते। लगभग हर कोई, हर किसी का रिश्तेदार ही था, सो ख़ूब गपशप होती, जैसा कि बड़ों में आमतौर पर होता है।

लेकिन बड़ों की तरह यह गपशप बच्चों को अपनी तरफ़ नहीं खींचती थी, और तम्बोला में भी उनकी भागीदारी कुछ ख़ास-ख़ास मौकों पर ही होती थी, जब अचानक किसी बात पर लोगों में जोश-सा फूटता तो बच्चे भी उसमें शामिल हो जाते और खूब हो-हल्ला मचाते। रग्बी और फ़ुटबाल को मिला-जुलाकर बनाए गए खेल बस स्कूली मैदानों में खेले जाते और वह भी सिर्फ़ अच्छे मौसम में, जो कि साल में बस कुछ ही महीनों का होता। ताश खेलना उन्हें पसन्द था- आज भी मेरे मन में वह तस्वीर बनी हुई है, एक गोल दायरे में एकदम तनकर, चौकन्ने बैठे नन्हे बच्चे अपने छोटे-छोटे हाथों में ताश के पत्तों को पंखे की तरह फैलाए ऐसा दिखाते मानो बड़ी संजीदगी से खेल रहे हों।

बेशक दूसरी जगह के बच्चों की तरह ग्नथांग के बच्चे भी नए-नए खेल बनाने में उतने ही होशियार और कल्पनाओं से भरे थे फ़र्क़ बस इतना है कि उनके खेल मौसम से जुड़े हुए थे। मेरे ख़्याल में बर्फ़बारी के दिनों में उनकी कला पूरी तरह खुलकर सामने आती थी। जो भी तरह-तरह की चीज़ें वह बनाते, वो देखने में बिलकुल साधारण-सी लगतीं, लेकिन उनमें प्रतिभा का एक पुट छुपा रहता था। भरपूर सर्दी के दिनों में जब ख़ूब बर्फ़ पड़ती, यह बच्चे इधर-उधर बेकार फेंकी हुई चीज़ों से कमाल के स्कीज़ और स्लेज (बर्फ़ पर चलने वाली गाड़ियाँ) बनाते, जो बख़ूबी अपना काम करती। वह रबड़ के हल्के घुमावदार टुकड़े लेते और उन्हें ठीक बीच तक काटकर उनमें लकड़ी की छड़ों को खम्भों की तरह लगाते और स्कीज़ गाड़ी बना लेते। पुराने क्रेट के दोनों बाजुओं को काटकर, उसके दोनों तरफ़ लकड़ी के तख़्तों को कील से जोड़ा जाता और स्लेज बना ली जाती। वह उन स्लेजों को अपने हाथों से खींचते, जिससे उनकी माताओं को अक्सर यह शिकायत रहती कि एक ही सर्दी में वह कितने ही दस्तानों की धज्जियाँ उड़ा देते हैं! लेकिन सड़कों और ढलानों पर जमी हुई बर्फ़ पर जब वह

फिसलते हुए जाते, तो वह नज़ारा देखने लायक होता था, सुर्ख चेहरे, बहती हुई आँखें, उत्तेजना में डूबे चिल्लाते, धूम मचाते हुए।

एक बहुत ही दिलचस्प खेल मैंने उनसे सीखा जो वह बर्फ़ के साथ खेलते। अगर आप बर्फ़ से ढकी किसी ढलान के ऊपरी सिरे पर खड़े हैं, तो बर्फ़ का एक छोटा-सा गोला बनाएँ और उसे अहिस्ता से ढलान पर लुढ़का दें। आप देखेंगे कि जैसे-जैसे वह नीचे लुढ़कता जाता है अपने साथ और बर्फ़ को जोड़ता चला जाता है, और उसके पीछे एक अजीब-सी पगडण्डी बनती चली जाती है, जो किसी बाल-येती (हिम-मानव) के पैरों के निशानों जैसी लग सकती है! और जब बच्चों का एक पूरा समूह एक साथ यह करता है तो उसका नज़ारा एकदम चौंकाने वाला होता है।

जब बर्फ़ पिघलनी शुरू होती तो जिन परिवारों के पास ईंधन ख़त्म हो जाता वह अपने बच्चों को जुनिपर की टहनियाँ इकट्ठी करने के लिए भेजते। यह एक बड़ी मुहिम होती थी- दोस्तों के गिरोह बनते, छोटे भाई-बहन साथ हो लेते और निगाह रखने के लिए कुछ बड़ी उम्र की औरतें भी साथ जातीं। बच्चों के पास, बड़ों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली टोकरियों जैसी ही छोटी-छोटी टोकरियाँ होतीं, जो उनकी पीठों पर झूलती रहतीं, और चाकू या कुल्हाड़ियाँ भी बिलकुल बड़ों जैसे ही होते थे, जिन्हें बैल्टों या कमर के गिर्द बँधे कपड़ों में बड़े नाटकीय अन्दाज़ में खोंसा जाता था। हर तरफ़ जमकर मस्ती होती और गीत गाए जाते, अलग-अलग टोलियाँ खूब शोर मचाती चलतीं।

और फिर जब बारिश आती तो बच्चों को एक तरह से बिलकुल खुला और आज़ाद छोड़ दिया जाता। वे गाँव के नीचे घाटी में बनी फ़ौजियों की छावनियों तक चले जाते, घरों और परिवारों से बेहद दूर बैठे, फ़ौजियों को उन्हें देखकर बरबस अपने बच्चों की याद सताने लगती और वह उनके साथ खूब लाड़-प्यार करते। हाथों में छड़ियाँ लिए, ढलानों पर उग आए बेशुमार फूलों के सिरों को काटते, वह पहाड़ी के कभी ऊपर तो कभी नीचे छलाँगें लगाते फिरते। घाटी को बीचों-बीच से काटती हुई नदी की धारा तक जाना उनका सबसे पसन्दीदा खेल होता, जहाँ वे जुगाड़ से बनी मछली पकड़ने वाली छड़ों से मछली पकड़ने की कोशिश करते। हालाँकि मछली पकड़ने में कामयाबी तो कभी-कभार ही मिलती लेकिन उनकी मेहनत भरपूर रंग लाती जब किनारों पर दूर-दूर तक उगी स्वादिष्ट जंगली स्ट्राबेरियाँ अच्छी-ख़ासी मात्रा में उनके हाथ लग जातीं।

बेशक खेलों के उनके पिटारे में भी कल्पना के लिए भरपूर गुंजाइश रहती थी, और उन्हें भी दिलचस्प लगने वाले बड़ों की नकल उतारने में मज़ा आता, और उनके लिए तो जिस भी यूनिट की तैनाती घाटी में होती उसके जवान ही सबसे दिलचस्प होते। यूनिट के परिसर में होने वाले हर समारोह को ऊँची जगहों पर बैठे बच्चों के यह झुण्ड बड़े ग़ौर से देखते थे। उनमें से ज़्यादातर यही कहते कि बड़े होकर वे सेना में भर्ती होंगे। बाद में बच्चों ने भले ही कुछ और किया हो, लेकिन उस समय तो वे सचमुच ही उन बालिगों से सम्मोहित थे। और इस बात का सबूत मुझे साफ़-साफ़ देखने को मिला जब एक बार मैं एक खड़ी ढ़लान पर चढ़ने की कोशिश कर रही थी। मैंने बहुत-ही छोटे-छोटे बच्चों की एक पलटन को टेड़ी-मेड़ी कतार में 'मार्च' करते हुए पास से गुज़रते हुए देखा, उनकी अगवाई एक किशोर उम्र का लड़का कर रहा था, जिसने हाथ में एक छड़ी पकड़ रखी थी, जो शायद झूठ-मूठ के उन अति-उत्साही फ़ौजियों पर रौब डालने के लिए थी। जैसे ही वे मेरे क़रीब पहुँचे तो लीडर ने फुसफुसाकर उनसे कुछ कहा। जैसे ही वह मेरे पास से गुज़रे तो उन्होंने अपनी मुस्कान बिखरते हुए नमस्ते की और साथ ही अपने मैले-कुचैले हाथों को अटपटे ढंग से माथे तक उठाया और सलूट किया, हालाँकि स्वेटरों और उसके ऊपर पहने हुए कोट की वजह से उनके बाज़ू को ऊपर उठने में बड़ी मशक्कत करनी पड़ी।

जैसा कि हर जगह होता है, उस गाँव में भी उत्सव के दिन बच्चों के लिए ख़ास उत्साह से भरे होते थे। जिनमें से एक था लोसर, यानी तिब्बती नया साल, वह दिन सभी बच्चों के लिए, भले ही वह तिब्बती हों या नेपाली, खूब मज़े और खाने-पीने का दिन होता। ऐसा ही एक दिन बुद्ध पूर्णिमा का भी होता, जिसके लिए उनके मन में बहुत आकर्षण था, क्योंकि उस दिन बड़ी उम्र के लोग रंग-बिरंगी पोशाकें पहनते, विग और चेहरों पर मुखौटे लगाते और फिर एक शोभायात्रा निकाली जाती जो दो घाटियाँ के पार दूसरे गाँव में जाकर ख़त्म होती। इसी तरह तिब्बत दिवस पर पारम्परिक पोशाकें पहने तिब्बती वयस्क और सारे बच्चे गोम्पा में इकट्ठे होते, जो एक तरह का पूजा-स्थल था। वहाँ पर कुछ भाषण दिए जाते, उसके बाद गाँव में एक जुलूस निकाला जाता। लोग दलाई लामा की तस्वीरें और बैनर उठाए हुए, गलियों में नारे लगाते हुए निकलते और वापस गोम्पा तक आते।

शादियों में भी खूब मज़ा होता था, पूरे गाँव को खाने की दावत पर बुलाया जाता, गएका जैसे ख़ास पकवान तैयार करने के लिए रसोईए ख़ासतौर पर गंगटोक और कलिम्पोंग से बुलवाए जाते। इन पकवानों में माँस की खूब मोटी-मोटी डलियाँ और नूडल होते थे। ऐसे मौकों पर, अक्सर ऐसा लगता कि उस बड़े ताम-झाम वाले आयोजन के बीच बच्चे अपना ही एक छोटा-मोटा-सा जश्न मना रहे होते।

ग्नथांग के बच्चे मेरे दोस्त थे और यह सोचकर मुझे बहुत रोमांच होता है कि मैंने भी कुछ नए खेल सीखने में उनकी

मदद की। यह ग्नथांग में बिताई मेरी आख़िरी सर्दियों के दिन थे, बर्फ़बारी से पहले हवा बहुत तेज़ हो गई थी, ऊपर से गिरते हुए तापमान की वजह से उसकी ठंडक ऐसी थी जो चीरती हुई भीतर तक उतर जाती, ऐसे मौसम में सैर के लिए जाना एक भारी जद्दोजहद का काम हो गया था। सो मैंने गोल्फ की कुछ छड़ियाँ और गेंदों का एक पैकेट लिया और एक खाली झोपड़ी की टीन की छत पर उन गेंदों को आगे-पीछे लुढ़काना शुरू किया। जल्द ही बच्चों की एक छोटी-सी टोली वहाँ इकट्ठी हो गई, जो चुपचाप मुझे देख रही थी। बच्चे मेरी तरफ अक्सर ऐसे ही उत्सुकता से देखा करते थे, सो मुझे इसकी आदत-सी हो गई थी, इसलिए शुरू में तो मैंने उनकी इस दिलचस्पी पर कुछ ध्यान नहीं दिया, फिर एक दिन मैंने देखा कि कुछ लड़के हल्की मुड़ी हुई छड़ी को घुमाकर गेंद को यूँ उछाल रहे थे कि वह एक बहुत ही सुन्दर धनुष जैसी चाप बनाती हुई हवा में जाती।

ऐसा नहीं है कि गोल्फ़ जैसा यह खेल ही ग्नथांग की खेल पिटारी में मेरा एकमात्र योगदान था। एक दिन जब बर्फ़बारी रुक चुकी थी, और खिली हुई धूप में मैं टहलने निकली, मैंने देखा कि गर्म कपड़ों में लिपटे बच्चों की एक टोली, जिसमें तीन से दस साल तक के बच्चे थे, बड़ी ही मेहनत के साथ हिम-मानव बनाने में जुटी हुई थी, इस बात से बिलकुल बेख़बर कि उनकी नाक ठण्ड के मारे सुर्ख लाल हो रही थी। और एक बार फिर, जैसे ही बर्फ़ पड़नी शुरू होती है, बड़े लोग फिर से अपनी बैठकों में अलाव जलाकर उसके इर्द-गिर्द झुरमुट बनाए बैठे होते हैं और बाहर, बच्चों के लिए खेलों का एक नया दौर फिर से शुरू हो जाता है!

निमरत खण्डपुर पिछले आठ सालों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन के साथ जुड़ी हुई हैं। इन दिनों वह स्कूल ऑफ़ कंटीन्यूइंग एजुकेशन एंड यूनिवर्सिटी रिसोर्स सेंटर, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का हिस्सा हैं, जहाँ वह पेशेवर विकास कार्यक्रमों और शिक्षा नीति से जुड़े कामों में अपना योगदान देती हैं। उनसे *nimrat.kaur@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : बलराम बोधि **पुनरीक्षण** तथा **कॉपी एडीटिंग :** स्वाति भदौरिया

गर्मियों की छुट्टियाँ : सीखने का एक अनौपचारिक अनुभव

प्रकाश चन्द्र गौतम

'स्कूल में दाखिल होने से बहुत पहले ही बच्चों का सीखना शुरू हो जाता है, यही इस सारी चर्चा का शुरुआती बिन्दु है। स्कूल में बच्चा जो कुछ भी सीखता है उसका अपना एक इतिहास होता है। मिसाल के तौर पर बच्चे जब स्कूल में गणित सीखना शुरू करते हैं, तो उससे बहुत पहले ही संख्याओं का उन्हें कुछ-न-कुछ अनुभव हो चुका होता है...।' *एलएस वाईगोत्सकी, माइंड इन सोसाइटी*

सीखना सिर्फ़ स्कूल के चुनौती भरे माहौल पर ही निर्भर नहीं करता : वाईगोत्सकी का सारा काम सीखने में सामाजिक मेल-जोल के महत्व पर ज़ोर देता है। एक तंत्र के रूप में स्कूल मेल-जोल के कई औपचारिक और अनौपचारिक मौक़े प्रदान करता है। यह देखा गया है कि ज़्यादातर वैकल्पिक स्कूल नियमित स्कूलों के मुकाबले ग़ैर-रस्मी या अनौपचारिक तरीक़ों का ज़्यादा इस्तेमाल करते हैं। ऐसे मौक़ों से सीखने का जीवन में एक ख़ास मूल्य है और वह हमेशा के लिए बचपन की एक अनमोल और कभी न भूलने वाली याद का हिस्सा बन जाता है। एक वयस्क के तौर पर हम अपने दिमाग़ को इस तरह से ढाल लेते हैं कि किसी ख़ास समय पर उसे काम करना है और फिर किसी तय समय पर आराम करना है। हम इस चीज़ के इतने आदी हो जाते हैं कि अपनी पसन्द और नापसन्द को भी नजरन्दाज़ कर देते हैं और सीखना एक स्वाभाविक प्रक्रिया बन सके ऐसे किसी मुनासिब समय और मौक़े का इंतज़ार करते रहते हैं। लेकिन बच्चों के लिए सीखने को इस तरह से समय और स्थान में बाँटना सचमुच में बहुत मुश्किल होता है। उनके लिए सीखना एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जिसका समय और उससे जुड़े दूसरे कारकों के साथ कोई लेना-देना नहीं।

गर्मियों की छुट्टियाँ, एक ठहराव का मौक़ा

बच्चों पर कई तरह के दबाव होते हैं जैसे उन्हें काम पूरा करना होता है, प्रोजेक्ट बनाने होते हैं, सामाजिक और भावनात्मक तौर पर ख़ुद को ढालना होता है, क्लास का काम और फिर घर से करके लाने के लिए दिया गया काम। दुख की बात यह है कि हमने अपने स्कूलों को इस तरह से बना लिया है जहाँ पर बच्चों को "जीवन" के लिए नहीं बल्कि सिर्फ़ "रोज़गार" के लिए ही तैयार किया जाता है। जीवन के हमारे नज़रिए सीमित हो सकते हैं ; अक्सर हम अपने बच्चों पर डॉक्टर, इंजीनियर बनने के लिए, या फिर किसी तरह वे जीवन की कठिनाइयों का सामना करने के लिए तैयार हो जाएँ, इसके लिए दबाव डालते हैं। हमारी बनाई इन ऊँची-ऊँची उम्मीदों के बीच सबसे अधिक बच्चों को ही पिसना पड़ता है क्योंकि आमतौर पर माँ-बाप के अधूरे सपनों को पूरा करने के लिए बच्चों को मजबूर किया जाता है।

ऐसे में गर्मियों की छुट्टियों की यह फ़ुर्सत इतनी महत्त्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि तभी बच्चों को यह मौक़ा मिलता है कि इस तरह के सारे दबावों से छुटकारा हासिल कर सकें और छुट्टियों में कुछ समय अपने लिए निकाल सकें। हमारी हताशा और सख़्ती परीक्षाओं में उनके ग्रेड और अंकों पर हमारी टिप्पणियों में साफ़-साफ़ झलकती है। चूँकि यह परीक्षाएँ गर्मियों की छुट्टियों से ठीक पहले होती हैं, सो गर्मियों की छुट्टियाँ हर उम्र के बच्चों के लिए, कभी-कभार नीरस और थकाऊ हो जाने वाली औपचारिक स्कूली व्यवस्था से राहत हासिल करने का एक बड़ा मौक़ा साबित हो सकती हैं।

शहरी सन्दर्भ में छुट्टियों का महत्त्व

यह कोई तुलना की बात नहीं है, लेकिन सच्चाई यही है कि शहरी माहौल में हमने सीखने के ग़ैर-रस्मी मौक़ों को बरबाद या फिर बहुत ही कम कर दिया है। चमक-दमक वाले कोचिंग सेंटर, तरह-तरह की ट्यूशन, दिमाग़ी-विकास और अबेकस गणित की क्लासें, योग और कराटे आदि ने इस सिस्टम के जाल में फँसे हुए माँ-बाप के सपनों का ख़ूब फ़ायदा उठाया है। उन्हें लगता है कि छुट्टियों के दौरान उनके बच्चों की पढ़ाई रुकनी नहीं चाहिए और इसीलिए वह उन्हें तरह-तरह की वैकल्पिक क्लासों में भेज देते हैं। बदक़िस्मती से मीडिया और हमारे सामाजिक संसार ने भी एक काल्पनिक दुनिया खड़ी कर दी है और हमारे बच्चों को व्यवसायिक दुनिया में ला खड़ा किया है, जिसे विभिन्न प्रतियोगिताओं, विशेषज्ञों की टिप्पणियों और चैम्पियनशिप जैसी बाज़ार की चालबाज़ियों ने ख़ूब आकर्षक बना दिया है।

दूसरे सन्दर्भ

एक निर्बाध समय जिसे पहले से तय की गई योजनाओं और जड़ हिस्सों में बाँटा न गया हो, जिसमें कोई बच्चा अपनी उर्जा को फिर से हासिल कर सके, ऐसा तोहफ़ा तो अब बस

गाँवों में ही मिलता है, महानगरों में यह अनुभव मुश्किल से ही मिल पाता है। हो सकता है कि ग्रामीण परिवारों की अपनी चुनौतियाँ, मुश्किलें और संघर्ष हों, लेकिन वे आपसी सम्मान और स्नेह के धागे से सबको जोड़ लेते हैं। आदिवासी गाँवों में लोग मेहमानों का स्वागत करते हैं। भले ही वे अपने मासिक बजट से बाहर जाकर महँगी या दिखावटी चीज़ें मेहमानों के लिए पेश न करें लेकिन चाय, पानी और भोजन से उनकी पूरी आवभगत करते हैं। वे पूरे दिलोजान से मेहमाननवाज़ी करते हैं। उनके बीच छुट्टियाँ बिताने वाले बच्चे भी सम्मान, लोगों से मेल-जोल और सामाजिक तालमेल जैसे गुणों को सीखते हैं। वे लोगों से मिलने-जुलने, मिलकर काम करने और एक साथ रहने का मूल्य समझने लगते हैं। परिवारिक समस्याओं को पूरे समुदाय की समस्या के रूप में देखा जाता है। ऐसे आपस में जुड़े हुए सामाजिक ताने-बाने से लोगों को ज़िन्दगी की मुश्किलों से जूझने का बल मिलता है।

ग्रामीण और अर्ध-ग्रामीण इलाकों में जिस तरह की विविधता के दर्शन होते हैं वह भी एक तरह की सामाजिक सम्पदा है जो जीवन भर के लिए सीखने का आधार बनती है और उनके भावी जीवन में नए आयाम जोड़ती है। सिस्टर सिरिल ने सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए एक नाम चुना है- 'रेनबो चिल्ड्रन' या 'इन्द्रधनुषी बच्चे'। यह बच्चे जब मुख्यधारा की शिक्षा में पूरी तरह रच-बस जाते हैं तो उनमें भावनाओं की इतनी छटाएँ, इतने रंग होते हैं जिन्हें एक समान सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाले हमारे ज़्यादातर स्कूलों में महसूस ही नहीं किया जा सकता। हालाँकि वे निजी पहचानों, और राय व विचारों में होने वाले मतभेदों को समझते हैं, साथ-ही-साथ अलग-अलग संस्कृतियों, भाषाओं और उनके शब्द-भण्डारों से परिचित होते हैं। एक-दूसरे की मदद करते हैं। गर्मियों की छुट्टियों में बच्चों को खुलकर एक-दूसरे से घुलने-मिलने और किसी तय योजना या औपचारिक तरीक़ों के बिना इन मूल्यों को सीखने का मौक़ा मिलता है।

गर्मियों की छुट्टियाँ : खेलने-कूदने का मौसम

तमाम सीमाओं के बावजूद बच्चे अपने दोस्तों के साथ मस्ती करने का मौक़ा कभी नहीं गँवाते। वह इकट्ठे होते हैं, मिलकर खेलते और काम करते हैं। बच्चे बड़ों की नक़ल उतारना चाहते हैं और इसके लिए वह दुनिया भर के खेल खेलते हैं, एक-दूसरे के साथ मेल-जोल बनाते हुए खेल-ही-खेल में बड़ों का पूरा संसार बना डालते हैं। बड़ों की भूमिका निभाने में, मूक-अभिनय और बिलकुल वैसे ही हाव-भाव दिखाते हुए, उनके पात्रों का चित्रण करने में उन्हें खूब मज़ा आता है। वे बने-बनाए नियमों-कानूनों के ढाँचों से ख़ुद को आज़ाद कर लेते हैं, और समाज के अलग-अलग पात्रों की भूमिका निभाते हुए वयस्कों की सत्ता या ताक़त का भी मज़ा लेते हैं। अभिनय करते हुए अपने संवाद भी वह ख़ुद ही बना लेते हैं।

References

Mind in Society, L S Vygotsky

The Rainbow Programme, Sister C M Cyril Mooney

Escape From Childhood - the Needs and Rights of Children, John Holt

Conversations with children from Shankardah and Dondki villages, Chhattisgarh.

प्रकाश चन्द्र गौतम 2012 से अज़ीम प्रेमजी स्कूल, धमतरी में पढ़ा रहे हैं। इससे पहले वे मध्यप्रदेश और छतीसगढ़ के आदिवासी, ग्रामीण और शहरी इलाकों में 16 साल से ज़्यादा लम्बे अर्से तक स्कूल शिक्षक रह चुके हैं। उन्होंने पहली से बारहवीं क्लास तक के बच्चों को पढ़ाया है। वे अँग्रेज़ी, इतिहास और जीवविज्ञान विषय पढ़ाते हैं। उन्होंने ऑल इंडिया रेडियो, रायपुर, छतीसगढ़ में अस्थाई उद्घोषक के तौर पर भी काम किया है। उनसे *prakash.gautam@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : बलराम बोधि **पुनरीक्षण** तथा **कॉपी एडीटिंग :** स्वाति भदौरिया

टी-लैब : ख़ुशियों का आँगन

प्रमोद मैथिल

'विद्यार्थियों से जब यह पूछा गया कि क्या वे स्कूल में कभी बोर होते हैं, या ऊब महसूस करते हैं, तो एनएआईएस के 83 प्रतिशत विद्यार्थियों ने कहा कि कभी-कभार (50%) या अक्सर (33%) वह बोरियत महसूस करते हैं। इसके मुकाबले पब्लिक स्कूल के विद्यार्थियों में यह आँकड़ा 86% था, जिनमें 36% कभी-कभार और 50% अक्सर ही ऊब महसूस करते थे।'

एचएसएसएसई रिपोर्ट 2016[i]

यहाँ यह बात सिर्फ़ इस मुद्दे को रेखांकित करने के लिए कही गई है कि हमारे स्कूलों में विद्यार्थियों की एक बड़ी संख्या है जो ख़ुद को अलग-थलग महसूस करती है। मेरे ख़्याल में समस्या बच्चों में नहीं है। असल में इस दिशा में हुई खोज तो यह दिखाती है कि बच्चे वैज्ञानिकों की तरह काम करते हैं[ii]। पियाजे का दावा है कि बच्चे "ज्ञान-निर्माण"[iii] करते हैं। ऐतिहासिक तौर पर स्कूलों को इस तरह डिज़ाइन किया गया कि बच्चों के सपनों, उनकी आकाँक्षाओं एवं उनके हितों को पाठ्यक्रम में कोई जगह नहीं मिली और बच्चों के सीखने की रफ़्तार और उनकी निजी पृष्ठभूमि का कोई ख़्याल नहीं रखा गया।

आप मुझे इज़ाज़त दें तो मैं इन बातों पर ज़ोर देना चाहूँगा :

1. स्कूल अकादमिक तौर पर बच्चों को अपनी तरफ़ नहीं खींचते।
2. सच्चाई यही है कि जिस तरह से उन्हें पढ़ाया-लिखाया जाता है बच्चों को उसमें कोई मज़ा नहीं आता।

मैंने इतने सालों में जो अन्तर्दृष्टि प्राप्त की और जो सीखा है उसके आधार पर मैं इस लेख में उपर्युक्त कथनों पर अपनी बात रखने की कोशिश कर रहा हूँ। बच्चों के साथ मेरे अनुभवों से जो अन्तर्दृष्टि मिली और जो नवाचारी शिक्षाशास्त्र उभरकर आया है, उस पर भी विस्तार से बात करूँगा। यह कार्यप्रणाली विकसित हुई जब मैंने बड़ों के सत्ता के दायरे को थोड़ा छोटा कर दिया और बच्चों को स्वाभाविक तौर से सीखने और फलने-फूलने के मौक़े दिए। मैंने इसे नाम दिया 'नेचुरल लर्निंग मॉडल' (एनएलएम)।

वर्ष 2011 में, भोपाल में आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल (एएनडीएस) नाम के नवाचारी स्कूल की स्थापना हुई। तीन सालों के सफल संचालन के बाद, सीखने के उस सारे सफ़र को 'स्कूल फ़ार माई चाइल्ड' (पेंगुइन) नाम की एक किताब में दर्ज किया गया। उसमें भाषा, विज्ञान और गणित सिखाने के लिए किए गए नए प्रयोगों और स्कूल की तरफ़ से किए जाने वाले मूल्यांकनों के बारे में भी चर्चा हुई। अपनी बात को और ज़्यादा स्पष्टता से रखने के लिए उस किताब से कुछ वृतान्तों और उसमें दी गई कुछ दलीलों को इस लेख में शामिल किया है। स्कूलों के लिए 'नेचुरल लर्निंग मॉडल' (एनएलएम) पर आधारित टी-लैब (T-LAB) पर भी चर्चा की गई है।

टी-लैब की पृष्ठभूमि

हमारी शिक्षा प्रक्रिया में ज़्यादातर विज्ञान के एक रेखीय तरीक़े का ही दबदबा रहा है। मिसाल के तौर पर, प्राकृतिक विज्ञानों में, बेजान चीज़ों पर अगर हम एक ही तरह की ऊर्जा और तौर-तरीक़ों का इस्तेमाल करें तो उनका व्यवहार भी एक ही तरह का रहता है। वहाँ ज़्यादातर कारकों को हम अपने नियंत्रण में रख सकते हैं, इसलिए पूरी प्रक्रिया में उन चीज़ों की कोई भूमिका नहीं रह जाती। मिसाल के लिए अगर मुझे किसी गेंद को एक ख़ास स्थान पर फेंकना है, तो उस जगह की दूरी, उसमें लगने वाली ताक़त और अन्य कारकों को ध्यान में रखते हुए मैं एक सटीक योजना बना सकता हूँ और गेंद उसी स्थान पर जाकर गिरेगी। अब मान लीजिए कि गेंद की जगह कोई पक्षी है तो उसमें कई ऐसे कारक भी जुड़ जाएँगे जिन्हें नियंत्रित नहीं किया जा सकता क्योंकि पक्षी एक जीवित प्राणी है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि शिक्षा में हमारा सम्बन्ध बच्चों के साथ होता है, जिनके अपने दिल और दिमाग़ हैं, अपनी रुचियाँ हैं। समान परिणामों को पाने के लिए पूर्व-नियोजित चरणों को एक निश्चित क्रम में करने का विचार, शिक्षा के क्षेत्र में लागू नहीं किया जा सकता। इसके लिए बनने वाली योजना तो बिलकुल अलग क़िस्म की होनी चाहिए, इस बात को ध्यान में रखते हुए कि बच्चे सक्रिय अभिकर्ता हैं और शिक्षा की प्रक्रिया में जो भी होता है उससे उनका हित जुड़ा हुआ है।

नेचुरल लर्निंग मॉडल (एनएलएम)

सही अर्थों में उच्च शैक्षिक स्तर तभी हासिल हो सकता है जब बच्चों की एजेंसी को भी महत्त्व दिया जाए। ज़रूरत तो इस बात की है कि हम बच्चों पर भरोसा दिखाएँ और उसके मुताबिक़ स्कूल के ढाँचे और शिक्षा व्यवस्था में सुधार किए जाएँ। हमें ऐसी गतिविधियाँ, प्रक्रियाएँ और सामग्री तैयार करनी होगी कि बच्चों के बीच की विविधता एक संसाधन बन जाए और सीखने के माहौल में एक नई ऊर्जा भर दे, जिसमें बच्चे अपनी रुचियों और अपनी रफ़्तार से आगे बढ़ सकें, स्वतंत्रता, ज़िम्मेदारी और आपसी भरोसे के माहौल में फल-फूल सकें।

क्या हम स्कूलों में कोई ऐसी प्रणाली विकसित कर सकते हैं जिसमें हर बच्चा अपने ढंग से चीज़ों को कर सके और अपनी रफ़्तार और रुचि के मुताबिक सीख सके?

इस मामले में अपनी खोजबीन के दौरान जो भी मैंने सीखा और समझा वह मुझे जिस विधि की तरफ़ ले गया उसे मैंने एक नाम दिया 'नेचुरल लर्निंग मॉडल' यानी एक ऐसा तरीक़ा जिसमें बच्चे स्वाभाविक या प्राकृतिक रूप से सीख सकें। एक जैसे वर्गों को, अलग-अलग कोणों पर, एक केन्द्र के गिर्द रखने पर इसका प्रतीक बनाया जा सकता है। और ऐसा करने पर बीच में एक पूर्ण गोल आकार अपने आप ही बन जाएगा। यहाँ सारा ध्यान केन्द्र और वर्गों पर ही था न कि उस गोल आकार को बनाने में।

शिक्षा के मामले में, सीखने के इच्छित उद्देश्य वही बड़ा गोल आकार है जो कि मुख्य नहीं बल्कि एक सह-उत्पाद है, जो बाद में उभरकर आता है। हमें बस केन्द्र पर ध्यान देने की ज़रूरत है जो कि बच्चे की ख़ुशी है और वह सारे वर्ग, ज्ञान के उन क्षेत्रों में, जिन्हें हम हासिल करना चाहते हैं, की गई तरह-तरह की खोजबीन हैं। यह रणनीति एक तरह से मौजूदा स्कूलों के तौर-तरीक़ों से बिलकुल उलट है जहाँ आमतौर पर पहले हम सीखने के लक्ष्य तय करते हैं और एक पाठ्यचर्या बनाते हैं। और फिर पाठ्यक्रम और पाठ-योजना बनाई जाती हैं और फिर पढ़ाते वक्त सारा ध्यान इसी बात पर रहता है कि बच्चा हमारी योजना के मुताबिक चल रहा है या नहीं। इस तरफ़ तो ध्यान ही नहीं जाता कि बच्चा कुछ सीख भी रहा है या नहीं।

बच्चे सीखते कैसे हैं

भाषा

बच्चों में भाषा सीखने की अथाह क्षमता होती है। हम किसी भी चार साल के बच्चे की मिसाल ले सकते हैं जो अपनी मातृभाषा सीखता है। अगर उसकी मातृभाषा अँग्रेज़ी है तो मुझे नहीं लगता कि वह 'डी' और 'टी' अक्षरों की ध्वनियों को पहचानने में किसी तरह की कोई ग़लती करेगा। वह 'डेट' की जगह 'टेट' या 'टॉक' की जगह 'डाक' कभी नहीं कहेगा। हालाँकि कोई बच्चा यह नहीं बता पाएगा कि इन अक्षरों को एकदम सही तरीक़े से बोलने के लिए उसने अपनी जीभ को किस तरह मोड़ा। यह तो अपने आप सीखी हुई चीज़ है और सभी भाषाओं के लिए सही है। बच्चा ध्वनियों की इस पेचीदा व्यवस्था को समझता है और उन आवाज़ों को निकालना भी, वह भी बिना किसी के सिखाए।

जागते समय लगभग हर वक़्त ही यह आवाज़ें बच्चों के कानों में पड़ती रहती हैं और वे उनका इस्तेमाल करते हैं और उनके साथ खेलते हैं। जन्म के बाद के कुछ सालों में जब वे बोलने की शुरुआती कोशिशें करते हैं तो अपने बड़ों की प्यार-दुलार भरी प्रतिक्रियाओं से ही उन्हें यह अहसास होता है कि उन्होंने किसी ध्वनि को सही-सही बोल लिया है।

तो सीखने की प्रक्रिया की इस समझ से हमें क्या पता चलता है? यह बिलकुल सरल-सी बात है। बच्चों को भाषाओं से जान-पहचान बनाने और ख़ुद को अभिव्यक्त करने का हर मौक़ा दिया जाना चाहिए, और उनकी हर कोशिश के प्रति बहुत संवेदनशीलता से पेश आना चाहिए।

उत्सुकता, सीखने की ललक को बढ़ावा देती है

एक दिन कहानियों के सत्र के बाद छह साल की एक बच्ची क्लास में ही रुक गई। वह अपनी अध्यापिका से कुछ पूछने के लिए उतावली हो रही थी। उसने पूछा, 'ऐसा कैसे होता है कि जब भी आप किताब से कोई कहानी पढ़कर सुनाती हैं तो वह हर बार वैसी-की-वैसी ही रहती है। लेकिन जब मैं उसी किताब से कहानी पढ़कर सुनाती हूँ तो वह हर बार बदल जाती है?' अध्यापिका ने उसका जवाब दिया, 'मैं किताब में छपे हुए शब्दों को पढ़ती हूँ, जबकि तुम तस्वीरों से कहानी बनाती हो।' हमने इस बात पर ग़ौर किया कि उसके तुरन्त बाद ही वह बच्ची एक कहानी 'पढ़' रही थी। और फिर एक महीने के भीतर ही उसने पढ़ना सीख लिया। मुझे लगता है कि अध्यापिका के साथ हुई उस बातचीत ने उसमें छपे हुए शब्दों के रहस्य को जानने की उत्सुकता पैदा की, और उसी उत्सुकता में वह पढ़ना सीख गई।

T-LAB idea
By Prakriti Initiatives
A Dream Yard for HAPPINESS

भाषा के साथ प्रयोग

सीखने की कोशिशों के दौरान बच्चे भाषा के साथ प्रयोग करते हैं। भाषा के साथ उनके ऐसे ही कुछ 'खेलों और प्रयोगों' को मैं यहाँ पर रखना चाहूँगा। अपनी बेटी का ऐसा ही एक प्रयोग मुझे याद है जो उसने 5-4 साल की उम्र में किया था। उसके पास एक गेंद थी और वह चाहती थी कि मैं उसके साथ 'कैच-कैच' खेलूँ। उसने कहा, *'पापा, मैं फेंकूँगी आप केचना'* । जिस तरह से उसने केचना शब्द का प्रयोग किया उसने मुझे हैरान कर दिया। यह उसकी अपनी रचना थी, इंग्लिश शब्द कैच के साथ हिन्दी का प्रत्यय 'ना' जोड़ दिया। क्योंकि हम घर पर हिन्दी बोलते हैं, सो वह दौड़ना, कूदना, खेलना, रोना और नाचना जैसी क्रियाओं के बारे में जानती थी। उसने पता लगाया कि कैसे और कहाँ पर ना का इस्तेमाल करना है और केच की क्रिया के साथ 'ना' का प्रत्यय जोड़कर नया शब्द बना दिया।

स्कूलों में सीखने की भावना को बढ़ावा दिया जाना चाहिए और ऐसे मौक़े पैदा किए जाने चाहिए जिनमें नए-नए प्रयोगों और ग़लतियों के लिए जगह हो, और उसके लिए संसाधन जुटाने चाहिए और ऐसा माहौल बनाना चाहिए जिससे सीखने को बढ़ावा मिले। जो मेरी बेटी ने किया ज़्यादातर स्कूलों में कई शिक्षक इसे ग़लती भी मान सकते हैं और उसकी सज़ा भी दे सकते हैं, यह भूलकर कि ग़लतियाँ सीखने की प्रक्रिया का एक ज़रूरी हिस्सा हैं।

नेचुरल लर्निंग मॉडल के कुछ बिन्दु

बच्चों की शिक्षा में उनकी भागीदारी को मान्यता देना।

सीखना तो बच्चों की कोशिशों से अपने आप ही होता है- किसी दुधमुँहे बच्चे का उद्देश्य केवल अपनी बात को दूसरे तक पहुँचाना होता है न कि कोई भाषा बोलना। सीखना कोई सीधी लकीर में चलने जैसी चीज़ तो है नहीं, इसलिए अच्छा हो कि अलग-थलग विषय-सामग्री की बजाए, बस एक खुला माहौल बनाया जाए।

इस तरह का सहज माहौल बनाने के लिए तीन चीज़ें ज़रूरी हैं : शिक्षक का सत्तावादी भूमिका से निकलकर एक सहजकर्ता

की भूमिका में आना, बच्चों पर भरोसा और ग़लतियों के लिए जगह रखना।

टी-लैब : खुशियों का आँगन

हमने टी-लैब की रचना इस तरह से की कि वह बच्चों के लिए एक रोचक जगह बन सके और एनएलएम को व्यावहारिक तौर पर लागू किया जा सके। उसके अनूठे डिज़ाइन को विकसित

करने के लिए हमने कई जाने-माने विचारकों और दार्शनिकों से बहुत कुछ सीखा।

गाँधी जी का मानना था कि शिक्षा वह है जिससे बच्चे के शरीर, मन और आत्मा सभी पक्षों का सर्वोत्तम विकास हो सके। सर्वांगीण विकास का मतलब है ऐसी शिक्षा जिसमें हाथ, हृदय और मस्तिष्क तीनों को शामिल किया जाए –अँग्रेज़ी में इसे 3 एच (3 H – Hand, Heart & Head) का नाम दिया गया। मौजूदा शिक्षा प्रणाली और स्कूल सिर्फ़ दिमाग़ पर ही ज़ोर देते हैं, इस प्रणाली में हाथों के लिए बहुत ही कम जगह बचती है, और बच्चों के दिलों को शामिल करने की तो कोई बात भी नहीं करता! मेरा ख़्याल है कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में अगर हम इस 3 एच को भी जोड़ लें तो कई तरह के मसले तो अपने आप ही हल हो जाएँगे जो बच्चों को सीखने से रोकते हैं।

इवान इलिच के इस मशहूर कथन में भी यही बात प्रतिबिम्बित होती है : 'जो भी हम सीखते हैं उसका एक बड़ा हिस्सा हिदायतों का नतीजा नहीं होता बल्कि एक अर्थपूर्ण माहौल में बेरोकटोक भागीदारी का नतीजा होता है।'

टी-लैब क्या है?

टी-लैब स्कूल में एक ऐसी जगह है जो पूरी तरह से बच्चों के रचनात्मक काम के लिए ही है, जहाँ पर बच्चे अपने विचारों और उन सवालों पर काम करते हैं जो उनके दिमाग़ में चलते रहते हैं और वह भी अपनी रुचि मुताबिक और अपनी ही चाल से। टी-लैब में बच्चों को अपनी सहज रचनात्मक गतिविधियों को पहचानने और उसकी पुष्टि करने की पूरी स्वतंत्रता मिलती

है। इस जगह को विकसित करने में बच्चों को भागीदार बनाकर हम बच्चों के जुड़ाव और ज़िम्मेदारी को सुनिश्चित करते हैं।

टी-लैब तो बच्चों के सपनों और ख़्यालों की दुनिया है, जहाँ पर तरह-तरह की ऐसी सामग्री रहती है जिसे वे जैसे चाहें इस्तेमाल करें। और जो बच्चों को आज़ादी, ज़िम्मेदारी और भरोसे के एक माहौल में सीखने और फलने-फूलने के भरपूर मौक़े पैदा करती है। इसमें कई तरह के कार्य-केन्द्र बनाए जाते हैं जिनमें रखी सामग्री का भण्डार हमेशा बढ़ता रहता है। बच्चों की मदद के लिए माहिर फैसिलिटेटर वहाँ मौजूद रहते हैं और बच्चे वहाँ जो भी कर रहे होते हैं उसके बारे में वह उन्हें ऐसे सुझाव देते रहते हैं जिससे उन्हें अपने प्रोजेक्ट के अलग-अलग पहलुओं को देखने का मौक़ा मिले। वह डिज़ाइन और प्रक्रिया में सुधार लाने में भी बच्चों की मदद करते हैं।

टी-लैब डिज़ाइन

टी-लैब की कुछ विशेषताएँ :

टी-लैब मुद्रा

टी-लैब से सामग्री खरीदने के लिए बच्चे मुद्रा का इस्तेमाल करते हैं और वह अपने पूरे किए गए प्रोजेक्टों और मॉडलों को वापस टी-लैब को बेच देते हैं। इससे उन्हें प्रोजेक्ट की सुन्दरता, नवीनता और मौलिकता के आधार पर अपनी कोशिशों के मूल्य को परखने का मौक़ा मिलता है।

टी-लैब का अपना ख़ासतौर पर डिज़ाइन किया हुआ एक प्लानिंग बोर्ड होता है, अपने ग्रुप और *आइडिया टीम* में चर्चा करने के बाद बच्चे अपने प्रोजेक्ट को वहाँ पर दिखा सकते हैं। यह देखा गया है कि अपने काम को दोस्तों के साथ साझा करना उनके लिए प्रेरणा का सबसे बड़ा स्रोत होता है।

काम को सुचारू रूप से चलाने और सामग्री के बँटवारे के लिए, कार्य की प्रकृति के आधार पर टी-लैब को अलग-अलग हिस्सों में बाँटा जाता है, जैसे कि इलेक्ट्रीसिटी लैब, कलर लैब, कैमिकल और माइक्रोस्कोप लैब इत्यादि।

टी-लैब की प्रक्रियाएँ

टी-लैब का सारा काम-काज बच्चों की देख-रेख में होता है, बिना किसी बाहरी दख़ल के। तीन टीमों को बनाने के लिए चुनाव करवाए जाते हैं : *आइडिया (Idea) टीम* यह सुनिश्चित करती है कि दूसरों द्वारा प्रस्तुत किए गए विचार कार्यरूप में परिणित हो पाएँ। दूसरी टीम है *बैंक*, जो टी-लैब के मुद्रा से जुड़े काम-काज को देखती है। *मटीरियल (Material)* टीम प्रोजेक्ट की ज़रूरतों के मुताबिक अलग-अलग तरह की सामग्री को व्यवस्थित करती है।

काम को सुचारू रूप से चलाना

जो लोग टी-लैब में फैसिलिटेटर के रूप में काम करते हैं उनके साथ हम काफ़ी समय व्यतीत करते हैं ताकि एक अध्यापक की कंट्रोल करने वाली मानसिकता से बाहर आने में उनकी मदद की जा सके। बच्चे वहाँ जो भी काम कर रहे हों, उस बारे में उनके साथ चर्चा के लिए वे उनके आस-पास मौजूद रहते हैं। वे तरह-तरह के सवाल पूछकर बच्चों की सोच को किसी ख़ास दिशा में प्रेरित या प्रभावित भी कर सकते हैं और ज़रूरत पड़ने पर उनकी समझ का स्तर बढ़ाने में उनकी मदद कर सकते हैं।

क्रियान्वयन और परिणाम

हर बच्चा ख़ुद यह तय करता है कि उसे क्या-क्या करना है और किस तरीक़े से करना है। टी-लैब व्यक्तिगत पाठ्यक्रम पर काम करता है जिसमें हर बच्चे की निजता को ध्यान में रखा जाता है। यहाँ स्कूल की *निर्देशात्मक* अकादमिकता को *व्यावहारिक* अकादमिकता का पूरक बनाया जाता है। सफलता और असफलता दोनों का ही सीखने में एक योगदान होता है और वह योग्यता के विभिन्न स्तरों को हासिल करने में सहायक होती हैं। हमारा मानना है कि अनुभव आधारित अधिगम असल में स्कूली शिक्षा का एक पूरक है। यह हमें उपलब्धियाँ हासिल करने में सक्षम बनाता है और आत्म-निर्भरता, रचनात्मक कामों में सहयोग, आलोचनात्मक चिन्तन, समस्याओं को सुलझाने, और अवलोकन करने और सवाल उठाने जैसे कई महत्त्वपूर्ण निजी और सामाजिक मूल्यों का निर्माण करता है। इसमें मोटर स्किल्स के विकास के भी भरपूर मौक़े मिलते हैं।

निष्कर्ष

अब मैं आपका ध्यान वापस उसी मूल मुद्दे पर ले जाना चाहूँगा और ईवान इलीच के इस तर्क के साथ अपने लेख को ख़त्म करूँगा जो उन्होंने अपनी किताब 'डी-स्कूलिंग सोसाईटी' में दिया है :

"स्कूलमय" होकर विद्यार्थी "ज्ञान प्राप्ति" को "शिक्षण" में, "विद्या प्राप्त करने" को "दर्ज़ा पास करने" में, "क्षमता हासिल करने" को "डिग्री सर्टिफिकेट लेने" में, और "कुछ नया कह पाने की योग्यता हासिल करने" को "वाक्चातुर्य बनाने" में भरमा जाता है। "स्कूलमय" होकर उसका कल्पनाभाव "मूल्य" के स्थान पर "नौकरी" को मान्यता देता है। "स्वास्थ्य की देखभाल" के बदले "डाक्टरी चिकित्सा" को, "सामुदायिक जीवन सँवारने" के बदले "समाज सेवा" को, "हिफाज़त" के बदले "पुलिस से बचाव" को, "राष्ट्रीय सुरक्षा" के बदले "सैन्य शक्ति सन्तुलन" को, और "उत्पादक काम" के बदले

"अँधाधुँध औद्योगीकरण" को मिथ्या मान्यता मिलने लगती है।

यह लेख सीखने के अनुभवों का सिर्फ़ एक वृतान्त भर नहीं है। मैं इस धारणा पर सवाल उठाता हूँ कि सीखने की प्रक्रिया को बुद्धि के तल पर ही पूरी तरह से समझा जा सकता है। सिखाना सम्भव नहीं है, बस सीखना हो जाता है। हो सकता है कि सारे बच्चों की सीखने की यात्रा एक ही रास्ते से आगे न बढ़े। फिर भी गतिविधियों को ऐसे व्यवस्थित किया जा सकता है कि बच्चों के समूह के साथ सीखना हो पाए। मेरा सुझाव है कि हमें ऐसी गतिविधियों पर ज़ोर देना चाहिए जिनमें बच्चों के लिए खुली खोजबीन करने की विविध सम्भावनाएँ हों और नेचुरल लर्निंग मॉडल ठीक ऐसा ही है।

References

i https://www.fcis.org/uploaded/Data_Reports/2016-HSSSE_Final_1.pdf on 12 Nov. 18

ii Alison Gopnik. What do babies think? TED talk as on 2 Nov 2015

iii https://en.wikipedia.org/wiki/Jean_Piaget as on 2 Nov 2015

iv 'Doing' Academics—I have used language to stress that 'doing' does have a role in learning. 'Doing' complements theoretical learning and 'Individual and personalised syllabus' means that every child does a different thing in the Tinkering LAB.

v http://www.ryerson.ca/content/dam/lt/resources/handouts/ExperientialLearningReport.pdf as on 2 Nov 2015

प्रमोद मैथिल पिछले लगभग दो दशकों से एक शिक्षाशास्त्री, शोधकर्ता और उद्यमी के रूप में कार्य कर रहे हैं। वह 'स्कूल फ़ार माई चाइल्ड' (पेंगुइन प्रकाशन) के लेखक हैं और *प्रकृति इनिशिएटिव* के संस्थापक हैं, जिसने टी-लैब का निर्माण किया है। टी-लैब स्कूलों में रचनात्मकता को बहाल करने का एक अनूठा स्थान है, जहाँ पर बच्चे अपने विचारों पर खुली खोजबीन कर सकते हैं। वे एक TEDx स्पीकर भी हैं। उनसे *pramod.maithil@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : बलराम बोधि **पुनरीक्षण** तथा **कॉपी एडीटिंग :** स्वाति भदौरिया

प्रकृति एक शिक्षक

प्रीति राव

मेरी कहानी छोटी-छोटी शुरुआतों से बनी है। 80 के दशक में जब मैं किसी भी सामान्य लड़की की तरह बड़ी हो रही थी तो बेंगलूरु की हर छोटी-छोटी चीज़ से मुझे प्यार था – वहाँ की जलवायु से, वहाँ के लोगों से और संस्कृति से। मैं शुरू से ही वायुसेना की पायलट बनना चाहती थी। मेरा सपना बस पूरा होने के क़रीब था जब मैं बस एक इंच भर की दूरी से उससे चूक गई। अपने सपने को छोड़ने को मजबूर होने के बाद मैंने अनिच्छापूर्वक पढ़ाई जारी रखी और किसी तरह से एमबीए की पढ़ाई पूरी की। फिर ज़िन्दगी ने करवट बदली। हालाँकि मेरा कैरियर खूब अच्छा चल रहा था, लेकिन कॉरपोरेट्स के लिए काम करते हुए भीतर कुछ शून्यता-सी पैदा हो गई थी, कहीं कुछ कमी-सी थी। शादी के बाद मैंने काम छोड़ दिया, जिससे मुझे ख़ुद अपने लिए भरपूर समय मिला। बच्चे के जन्म ने धीरे-धीरे मेरे नज़रिए और सोच को बदल दिया। कुछ समय के लिए हम विदेश में रहे और खूब यात्राएँ की। इन सारे अनुभवों ने, जिनमें योग भी शामिल था, ख़ुद को और अपने आस-पास की दुनिया को समझने में मेरी मदद की। और फिर वह निर्णायक मोड़ आया। हमने भारत वापस लौटने का फैसला कर लिया। यह 2007 की बात है।

वापस लौटने के बाद पहली ही चीज़ जिस पर मेरा ध्यान गया, यह थी कि यह वह बेंगलूरु नहीं था जिसे मैं जानती थी। परिदृश्य जैसे नाटकीय रूप से बदल गया था। दुनिया भर में सॉफ्टवेयर और आईटी सेवाओं की बढ़ती हुई माँग के बीच बेंगलूरु दुनिया के नक्शे पर ख़ुद को एक पसन्दीदा आईटी शहर के रूप में स्थापित कर चुका था। एक बेहतर जीवन के वादे के साथ वह पूरे भारत और दुनिया भर से लोगों को अपनी तरफ़ खींच रहा था, लेकिन बेकाबू विकास और कमज़ोर अपशिष्ट प्रबन्धन की वजह से शहर पहचान में ही नहीं आ रहा था।

जैसे-जैसे मैंने गहराई में जाकर देखा तो बहुत सारी चीज़ें मेरे सामने आईं। चारों तरफ़ पेड़ बहुत ही कम रह गए थे, बारिश और तापमान का पैटर्न बदल गया था। झीलें सूख गई थीं या प्रदूषित हो गई थीं या फिर अतिक्रमण का शिकार हो चुकी थीं। हवा में प्रदूषण बढ़ता जा रहा था। उपभोक्तावाद तो मानो अपनी चरम सीमा पर था, अपशिष्ट प्रबन्धन की व्यवस्था तो एकदम दयनीय थी, और नागरिक चेतना का स्तर नीचे जा रहा था। बेंगलूरु किसी भी तरह भारत के किसी दूसरे शहर या

किसी अन्य विकासशील देश के बढ़ते हुए शहरों से अलग नहीं था।

मैंने सोचना शुरू किया : क्या यही है जो हम आने वाली पीढ़ियों के लिए छोड़कर जा रहे हैं? हम जो कर रहे हैं क्या वह न्यायोचित और टिकाऊ है? क्या हम नुक़सान को थोड़ा कम या उसकी कुछ भरपाई कर सकते हैं? व्यक्तिगत तौर पर मैं क्या कर सकती थी? इन बातों के जवाब मैंने अपने भीतर खोजने शुरू किए। कोई ऐसी जीवन शैली जो अधिक स्थायी हो? क्या उससे प्रकृति पर पड़ने वाला बोझ कम नहीं होगा? क्या हज़ारों साल से लोग धरती पर इसी तरह से नहीं रह रहे थे?

हमने सोचा कि एक कोशिश तो करनी ही चाहिए। अपने परिवार की मदद से जल्दी ही हमने छत पर कुछ जड़ी-बूटियाँ और सब्ज़ियाँ वगैरह उगानी शुरू कर दीं। एक बायो-गैस प्लांट भी लगा लिया जो गीले कचरे को खाना बनाने वाली गैस में बदलता था। एक गड्ढे में घर का कूड़ा इकट्ठा करके खाद बनानी शुरू कर दी। हमने बिजली बनाने के लिए एक

सोलर पैनल भी लगवाया। बारिश के पानी को इकट्ठा करना शुरू किया और यह सीखा कि जैव-एंजाइमों का इस्तेमाल कैसे करना है। घर में ऐसे क्लीनर इस्तेमाल करने बन्द कर दिए जो रसायनों से बनते थे। इन छोटी-छोटी चीज़ों से हमने न सिर्फ़ बाज़ार पर अपनी निर्भरता को घटाया बल्कि साथ-साथ कार्बन फुट-प्रिन्ट भी कम किए। अपनी इन छोटी-छोटी सफलताओं से प्रेरित होकर, अब मैं यह देखना चाहती थी कि क्या मैं दूसरों को भी ऐसी टिकाऊ जीवन शैली जीने में मदद कर सकती हूँ। और इस तरह से *सॉइल एण्ड सोल (Soil and Soul)* संस्था का जन्म हुआ!

सॉइल एण्ड सोल ने मुझे एक ऐसा मंच दिया जहाँ पर मैं ख़ुद को अभिव्यक्त कर सकती थी। जल्द ही मैंने स्थानीय समुदायों और यहाँ तक कि कॉर्पोरेट के लोगों से भी जुड़ना शुरू कर दिया। कई सारे ऐसे उत्पादों का जन्म हुआ जो पर्यावरण के अनुकूल थे। इस सारी यात्रा के दौरान मैंने यह महसूस किया कि टिकाऊ जीवन शैली के प्रति वयस्कों में जागरूकता और प्रेरणा की कमी है। सुख-सुविधा की आदत पर्यावरण के लिए हमारे सरोकारों पर भारी पड़ गई थी, जबकि बच्चों की सोच इससे ठीक उलट थी! बच्चों के साथ बातचीत के दौरान मैंने यह पाया कि उनमें इन विचारों के प्रति खुलापन होने के साथ-साथ घर के अन्दर बड़े बदलाव लाने की क्षमता भी है। लेकिन दुर्भाग्य की बात यही है कि कोई भी स्कूल इन बातों को पाठ्यक्रम के अन्तर्गत नहीं पढ़ाता है और न ही उनके बारे में कुछ सिखाता है।

यह महसूस करते हुए कि आने वाली पीढ़ियों में धरती के लिए

मैत्री भाव पैदा करना हमारे सामने एक सबसे महत्त्वपूर्ण काम है, मैंने सोचा कि हमारी शिक्षा प्रणाली की इस कमी को पूरा करने में शायद मैं कुछ मदद कर सकूँ। इस संकल्प ने हमें *सॉइल एण्ड सोल* में अपशिष्ट प्रबन्धन पर एक अनुभव आधारित मॉड्यूल विकसित करने का मौक़ा दिया। हमने उसे *'ज़ीरो वेस्ट कैम्पस प्रोग्राम'* (Zero Waste Campus Programme – ZWC) का नाम दिया। ZWC का यह एक साल का प्रोग्राम हर उस शिक्षण संस्था, स्कूल और कॉलेज के लिए है जो अपने संस्थान में उत्सर्जित कचरे का प्रबन्धन प्रभावी ढंग से करना चाहता है। इस प्रोग्राम को इस तरीक़े से तैयार किया गया है कि विद्यार्थियों और स्टाफ समेत सारे हितधारकों को इसमें शामिल किया जा सके। उद्देश्य बस यही है कि हर किसी को उसके द्वारा उत्सर्जित कचरे के प्रति ज़िम्मेदार और जवाबदेह बनाया जाए और वे ही उसका प्रबन्धन भी करें। इस प्रोग्राम के ज़रिए हम इस प्रकार के व्यवहार परिवर्तन का प्रयास करते हैं कि सभी के अन्दर इस विषय के प्रति अपनत्व और ज़िम्मेदारी की भावना जन्म ले जिससे एक टिकाऊ जीवन शैली की तरफ़ बढ़ने में मदद मिल सके।

सारे प्रोग्राम को चार प्रमुख मॉड्यूल में बाँटा गया है : *जागरूकता*, *ऑडिट*, *प्रबन्धन और जीवन्त एवं व्यावहारिक और संस्थागत प्रोजेक्ट*। सबसे पहले हम बच्चों को उनकी उम्र के लिहाज से अलग-अलग समूहों में बाँटते हैं और उनके साथ टिकाऊ जीवनशैली के बारे में जागरूकता पैदा करने करने के लिए काम करते हैं। उदाहरण के लिए – कैसे एक जागरूक और ज़िम्मेदार उपभोक्ता बनें? किसी विशेष उत्पाद का जीवन-चक्र क्या है? कचरा पैदा होना कहाँ से शुरू होता है, कहाँ जाकर उसका चक्र ख़त्म होता है और उससे क्या-क्या नुकसान होते हैं? *जागरूकता* का यह मॉड्यूल साल भर चलता है।

एक बार बच्चे जब इन बुनियादी बातों को समझ लेते हैं तो हम ऑडिट करवाने की प्रक्रिया शुरू करते हैं। इसमें पता लगाया जाता है कि स्कूल कितना कचरा पैदा करता है और उसके निपटारे के लिए हम किन तरीक़ों का इस्तेमाल कर सकते हैं। इससे कचरे के उत्सर्जन की मात्रा की एक बेसलाइन बनाने में

मदद मिलती है। हम कैम्पस के अन्दर और उसके आस-पास दोनों जगह कचरे के प्रबन्धन के लिए एक रूपरेखा तैयार करते हैं। इस प्रोग्राम के दौरान बच्चों को कचरे के उत्सर्जन को कम करने व प्रबन्धन करने के विभिन्न तरीक़ों के बारे में जागरूक किया जाता है। बच्चों द्वारा चलाए गए जीवन्त प्रोजेक्ट कार्यों के मूल्यांकन एवं सराहना के साथ प्रोग्राम समाप्त होता है। कुछ ख़ास उदाहरण इस प्रकार हैं : जड़ी-बूटियों का एक बगीचा बनाना, खाद और एंजाइम बनाने की इकाईयों का निर्माण करना, या फिर स्कूल में उत्सर्जित रद्दी को री-साइकल करने हेतु एक छोटी इकाई स्थापित करना।

एक प्रभावी ज्ञान-निर्माण के लिए हम कई तरह की शिक्षण प्रक्रियाओं का इस्तेमाल करते हैं। ऑडियो-विज़ुअल शिक्षण सामग्री की मदद से बच्चों की कल्पनाशक्ति को उभारा जा सकता है। एक और सिद्धान्त यहाँ पर बहुत उपयोगी है वह है किसी भी काम को खेल में बदल देना। कई तरह की सामूहिक गतिविधियों, सिमुलेशन, मस्ती और खेल से युक्त यह तरीक़े सुनिश्चित करते हैं कि इस प्रक्रिया में पूरी तरह से शामिल हैं और सीख भी रहे हैं। हम योग और प्रकृति से भी प्रेरणा हासिल करते हैं। वृक्षों को गले लगाना (hug-a-tree) और *संकल्प* लेने जैसे अभ्यास उन अवधारणाओं और विचारों को और भी मज़बूती देते हैं। *सॉइल एण्ड सोल* सारे साल की इस यात्रा का दस्तावेज़ीकरण करता है। इस यात्रा में हमें बहुत से दिलचस्प व्यवहार-परिवर्तन देखने को मिले, जैसे कि :

- बच्चों का अपने जन्मदिन पर सहपाठियों में चॉकलेट की जगह घर की बनी मिठाइयाँ/फल और सूखे मेवे वगैरह बाँटना।
- बच्चों का अपने माता-पिता पर इन बातों के लिए ज़ोर डालना कि वे प्लास्टिक के इस्तेमाल से बचें और खरीददारी के लिए घर से कपड़े की थैलियाँ लेकर जाएँ।
- प्लास्टिक की थैलियों से पर्यावरण पर पड़ने वाले बुरे प्रभावों के बारे में दुकानदारों से बातचीत करना और उन्हें शिक्षित करना
- खरीददारी की छोटी सूचियाँ : बच्चों द्वारा अपनी वैकल्पिक पसन्द बताना।
- पैकेट-बन्द चीज़ें खरीदने के बजाए चीज़ों को ख़ुद बनाने के तरीक़ों को अपनाना। उदाहरण के लिए, बच्चों ने रसायन आधारित क्लीनर खरीदने के बजाए ख़ुद अपने जैव-क्लीनर बनाना सीखा।
- सक्रिय रूप से सुनना, सामूहिक चर्चा, अभिव्यक्ति, दृढ़ता, स्वामित्व (ownership) जैसे व्यावहारिक कौशलों के माध्यम से सम्पूर्ण व्यक्तित्व में निखार आना।

उपर्युक्त सुधार बहुत ही मामूली नज़र आ सकते हैं, लेकिन वास्तव में इनसे, बच्चों को उनके कामों से पर्यावरण पर पड़ने वाले असर के प्रति जागरूक करने का बड़ा मक़सद हासिल होता है।

इन बदलावों को लाना आसान नहीं था। प्रोग्राम के हर पड़ाव पर हमें हर किसी को राज़ी करना पड़ा। विभिन्न राज्यों के अनेक स्कूलों, जिनमें कई अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल भी थे, के साथ बातचीत के दौरान हमने यह पाया कि इस तरह की अवधारणा पर किसी को राज़ी करना आसान नहीं होता।

सबसे पहली बात तो यही है कि ज़्यादातर स्कूलों को तो यह लगता ही नहीं कि पर्यावरण की ऐसी किसी शिक्षा की ज़रूरत है जो सिर्फ़ किताबों पर आधारित न होकर, असल जीवन और अनुभवजन्य ठोस बदलावों से जुड़ी हो। मुख्यधारा के यह स्कूल कक्षा में दी जाने वाली शिक्षा पर ही निर्भर रहते हैं और उनका सारा ध्यान बस किताबी ज्ञान पर ही केन्द्रित होता है। मैनेजमैंट की प्राथमिकताएँ और पर्यावरण के बारे में जागरूकता और प्रतिबद्धता की कमी अनुभव आधारित शिक्षा के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावटें हैं। बेशक दूसरी तरह के स्कूल भी हैं जहाँ ऐसी शिक्षा की स्वीकार्यता है लेकिन वहाँ या तो मैनेजमेंट की सहमति नहीं होती या फिर उनके पास पर्याप्त फंड नहीं होता। बहुत सारे सरकारी और निजी स्कूल इस श्रेणी में आते हैं *सॉइल एण्ड सोल* ने हमेशा ऐसे स्कूलों की मदद की है और वहाँ पर बिना किसी व्यय के ही कार्यशालाएँ संचालित की हैं। तीसरी तरह के स्कूल वैकल्पिक स्कूल हैं जहाँ पर पहले से ही ऐसे कुछ क़दम उठाए गए हैं। जहाँ पर विद्यार्थी और शिक्षक दोनों का ही झुकाव प्रयोग करने और सीखने की तरफ़ है। ऐसे स्कूलों के साथ हमारे जुड़ने और काम करने की सम्भावनाएँ ज़्यादा हैं।

हमने देखा है कि शहरी स्कूलों और बच्चों के मुक़ाबले ग्रामीण क्षेत्र के स्कूल और बच्चे ऐसे कार्यक्रमों के प्रति ज़्यादा सक्रिय और उत्साहित रहते हैं। कई सरकारी स्कूलों में बच्चों को पर्यावरण, संरक्षण और कचरा-प्रबन्धन जैसे विषयों के बारे में शिक्षित करने के लिए स्वैच्छिक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। उदाहरण के लिए, सिक्किम में बच्चों को यह सब सिखाया जाता है और वहाँ इस मामले में अधिक जागरूकता है। आमतौर पर देखें तो पर्यावरण की शिक्षा के बारे में माता-पिता का दृष्टिकोण बदल रहा है, लेकिन वह चाहते हैं कि स्कूल ही इस बारे में बुनियादी शिक्षा प्रदान करें।

अगर स्कूल हमारे प्रोग्राम को संचालित करने के लिए सहमत हो जाता है तो चीज़ें काफ़ी आसान हो जाती हैं। हमें इस बात पर पूरा यकीन है कि अगर हमारे इरादे नेक हैं तो नतीजे ख़ुद-ब-ख़ुद बोलते हैं। मैं अक्सर कहा करती हूँ कि बच्चे स्पंज की

तरह होते हैं, उनमें किसी भी चीज़ को आत्मसात करने की क्षमता होती है- बशर्ते कि हम अपने विचारों को असरदार ढंग से उन तक पहुँचा सकें। मेरी राय में तो वे बदलाव के सबसे अच्छे एजेंट हैं। इस मामले में एक मिसाल ग्रेटा थनबर्ग की है, जो जलवायु परिवर्तन पर काम करने वाली एक किशोर उम्र की कार्यकर्ता है और जिसके काम का प्रभाव पूरे यूरोप, अमरीका और आस्ट्रेलिया में फ़ैल रहा है। हज़ारों बच्चों के साथ मिलकर वह नीति-निर्माताओं को धरती के बढ़ते हुए तापमान के मुद्दे पर तेज़ी से काम करने के लिए दबाव बना रही है। इससे पहले कि बहुत देर हो जाए भारत को भी इस मामले में कुछ क़दम उठाने की आवश्यकता है। इस बात की ज़रूरत है कि हमारी युवा पीढ़ी यथास्थिति पर सवाल उठाए और पर्यावरण प्रबन्धन के मामले में देश को आगे ले जाने की दिशा में अपना योगदान दे।

जब मैं भारत में अपशिष्ट प्रबन्धन को देखती हूँ तो मुझे उसमें बहुत सारी दिक़्क़तें नज़र आती हैं। सबसे पहले तो यह रवैया कि मैं जो कचरा पैदा करता हूँ वह मेरी ज़िम्मेदारी नहीं है। इसे बदलना होगा। हम जो कचरा पैदा करते हैं उसकी ज़िम्मेदारी हमारी है। आज हमारे महासागरों में पागलपन की हद तक प्लास्टिक का कचरा फेंका जा रहा है, हमारी नदियाँ, झीलें और पानी के दूसरे स्रोत प्रदूषित हो रहे हैं। बढ़ती हुई सम्पन्नता ने उपभोक्तावाद को दीवानगी की हद तक हवा दी है, जिसका नतीजा अनावश्यक कचरे के ढेर हैं, जो हर तरफ़ नज़र आते हैं। पहाड़ों, रेगिस्तानों और जंगलों तक को नहीं बख्शा जा रहा है। वैश्विक जलवायु परिवर्तन एक वास्तविकता है। हालाँकि हर किसी के लिए कार्बन-मुक्त जीवन शैली में जीना शायद व्यावहारिक न हो, लेकिन बेतहाशा बढ़ रहा कचरा और पर्यावरण तो सभी की चिन्ता का विषय होना ही चाहिए। हम एक टाइम-बम पर बैठे हैं जिसका कांटा तेज़ी से घूम रहा है। सिर्फ़ जागरूकता और बड़े पैमाने पर समयबद्ध तथा विश्वसनीय क़दम ही देश और दुनिया को बचा सकते हैं।

कचरा प्रबन्धन के साथ ही *सॉइल एण्ड सोल* की तरफ़ से भोजन, ऊर्जा और पानी से जुड़े कार्यक्रम भी संचालित किए जाते हैं। परियोजनाओं का स्वरूप अलग-अलग संस्थाओं में, उनके अपने चुनाव के हिसाब से तय होता है। उदाहरण के तौर पर 'अपना भोजन ख़ुद उगाएँ', 'स्कूल को अक्षय ऊर्जा (Renewable Energy) के स्रोत में बदलना', जल-प्रबन्धन प्रणाली' जैसे कुछ प्रोजेक्ट के नाम लिए जा सकते हैं। हम उनके सुझावों का खुले मन से स्वागत करते हैं और उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप अपने प्रोग्राम को ढालते और स्वरूप देते हैं। ज़ाहिर है कि प्रत्येक प्रोग्राम उनके अनुभवों को और भी समृद्ध बनाता है और वहाँ जो सीखा जाता है वह जीवन भर के लिए होता है।

सॉइल एण्ड सोल में हम सिर्फ़ मुद्दों पर ही ध्यान केन्द्रित करने के बजाय नवाचारी और सरल हल भी खोजने की कोशिश करते हैं जो रोज़ाना की चुनौतियों का सामना कर सकें। हमारे उत्पाद पूरी तरह से प्राकृतिक, हाथ के बनाए हुए और टिकाऊ हैं। उन्हें बेचकर जो भी रकम इकट्ठी होती है उसी से हम देश भर में विभिन्न समुदायों के साथ मिलकर काम करते हैं और समाज में एक बेहतर बदलाव लाने की अपनी कोशिशों को आगे बढ़ाते हैं।

शिक्षा के मुद्दे पर जो भी काम हमने किया है, उससे सन्तुष्ट होने के बावजूद, मैं अपने आपको हमेशा एक बड़ी ज़िम्मेदारी की याद दिलाती रहती हूँ कि हमें ज़्यादा-से-ज़्यादा बच्चों और समुदायों तक पहुँचना है। मेरा सपना एक दिन एक ऐसा कैम्पस बनाने का है जो बच्चों को इस काबिल बनाए कि वे पर्यावरण के मामले में हमारी अगुवाई कर सकें।

कौन जानता है, हो सकता है कि यह दिन बहुत दूर न हो...!

प्रीति राव बेंगलूरु की एक पर्यावरण-उद्यमी हैं। वे *सॉइल एण्ड सोल* की संस्थापक हैं, जो कि एक ऐसी संस्था है जो टिकाऊ विकास के बारे में जागरूकता लाने के काम में जुटी हुई है। प्रीति एक शिक्षार्थी हैं, टिकाऊ जीवन शैली को जीती हैं, योग शिक्षिका हैं और कराटे की ब्लैक बैल्ट होल्डर भी हैं। प्रीति को यात्रा करना और शिक्षण बहुत पसन्द है। उनसे priti@soilandsoul.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : बलराम बोधि **पुनरीक्षण** तथा **कॉपी एडीटिंग :** स्वाति भदौरिया

भिन्नता को स्वीकार करना सीखना

शेफ़ाली त्रिपाठी मेहता

तीन दशक पहले, विकलांगों के सशक्तिकरण के लिए काम करने वाली संस्था 'आरुषि' के पहले दो दृष्टिहीन बच्चों को जब एक (मुख्यधारा के) स्कूल में दाख़िला मिला तो, दोनों बच्चे सुबह की सभा और खेलों के पीरियड के दौरान कक्षा में ही रहते थे। उनसे कहा जाता कि तुम भला वहाँ जाकर क्या करोगे?

समावेशी शिक्षा की परिभाषा, स्कूल/शिक्षा तक सबकी पहुँच पर ध्यान केन्द्रित करती है, जो कि उचित भी है क्योंकि समावेशन की राह में यह सबसे बड़ी रुकावट है, लेकिन उसके परे भी शारीरिक और मानसिक विकलांगता को देखने समझने का एक पूरा सामाजिक लोकव्यवहार है। हमारी लोकप्रिय फ़िल्में और साहित्य या तो त्याग की भावना को बढ़ावा देते हैं जिसमें कि एक विकलांग हीरो जानबूझकर एक खलनायक की तरह पेश आता है जिससे कि वह प्रेमिका की नज़रों से गिर जाए और एक शारीरिक रूप से सक्षम व्यक्ति के रास्ते से हट जाए। या फिर फ़िल्में और साहित्य मोटापे, हकलाने, नींद में चलने, ज़्यादा खाने, या धीरे-धीरे बोलने या सोचने को एक हास्य के विषय के रूप में पेश करते हैं। इसलिए विकलांग बच्चों को सिर्फ़ एक मुख्यधारा के स्कूल में दाख़िला मिल जाने से ही उनका अलगाव ख़त्म नहीं हो जाता बल्कि कई मायनों में यह अलगाव को बढ़ा भी सकता है।

जब हम विकलांग बच्चों के समावेशन की बात करते हैं तो हम हमेशा उन्हीं के नज़रिए से ही सोचते हैं - कि वे कैसा सोचते या क्या अनुभव करते हैं। लेकिन उनके और बाकियों के बीच की इस दूरी को प्रभावी ढंग से ख़त्म करने के लिए हमें यह समझना होगा कि जो बच्चे विकलांग नहीं हैं, उनके विचार क्या हैं और वे किन बातों को सामान्य मानते हैं।

बढ़ती हुई संवेदनाओं के इस दौर में जो बातें हमें वाजिब तौर पर भेदभावपूर्ण लगती हैं, अगर उन्हें हम अपने भीतर के पूर्वाग्रहों को देखें तो वे केवल लोगों के बीच अन्तर करने में मदद करती नज़र आएँगी। जब हम कहते हैं कि "तुम्हारी क्लास में वह लम्बी/गोरी/लम्बे बालों वाली/ ख़ूबसूरत-सी लड़की कौन है?" तो यह केवल विशेषण नज़र आते हैं, लेकिन यह बात कि "क्या तुम अपने जन्मदिन पर उस नाटे/मोटे/काले लड़के को बुला रहे हो?", सरासर अपमानजनक है। हो सकता है कि यह हमारा लोगों को पहचानने का तरीक़ा ही हो, लेकिन ऐसा करते हुए, दुर्भाग्य से हम जाति, वर्ग, धर्म के अलावा समाज को बाँटने वाली अन्य सैकड़ों बातों की ओर भी इशारा करते हुए से लगते हैं। हमारे भीतर छुपे हुए पूर्वाग्रह हमारी भाषा और हाव-भाव से प्रगट होते रहते हैं और बच्चे आस-पास के इन सारे मौखिक और ग़ैर-मौखिक संकेतों को अचेतन रूप से ग्रहण करते रहते हैं और आत्मसात भी। वे हमारे पूर्वाग्रहों को सूंघ लेते हैं और आडम्बरों के पार देख पाते हैं। इसके परिणामस्वरुप, जो लोग हमारे सामाजिक मानदण्डों या शरीर और दिमाग़ की सम्पूर्णता के जुनून के हिसाब से खरे नहीं उतरते उनका मज़ाक उड़ाया जाता है या फिर उन्हें आक्रामक व्यवहार का सामना करना पड़ता है।

तो मैंने कुछ बच्चों से इस बारे में बात की कि वे विकलांग बच्चों/लोगों के बारे में क्या सोचते हैं। पहली बात तो यह सामने आई कि जिन पब्लिक स्कूलों में वे पढ़ते हैं वहाँ इस तरह के कोई बच्चे हैं ही नहीं जो विकलांग हों। उनमें से कोई भी बच्चा कभी किसी विकलांग बच्चे से मिला ही नहीं था, हालाँकि ब्रेल या संकेत भाषा के बारे में उन्हें पता था, और उन्हें लगता था कि यह भाषाएँ सीखकर वे दूसरों की 'मदद' कर पाएँगे। उन्हें यह भी लगता था कि स्कूलों में वे सुविधाएँ नहीं हैं जो विकलांग बच्चों के लिए होनी चाहिए। दस साल की एक बच्ची ने कहा कि शुरू-शुरू में तो उसे एक विकलांग बच्चे के साथ कुछ अटपटा-सा लगेगा, लेकिन एक बार जब वे दोस्त बन जाएँगे तो फिर झिझक दूर हो जाएगी। उनमें से एक को तो इस बात की चिन्ता हो रही थी कि कुछ बच्चे "उनके बारे में कुछ अशिष्ट बातें बोल सकते हैं।" हालाँकि उन्हें यह लगता था कि शायद थोड़े अलग तरह से पर, विकलांग बच्चे भी वे सारा कुछ कर सकते थे जो वे कर पाते हैं, लेकिन बार-बार वे मदद शब्द का इस्तेमाल कर रहे थे। फिर भी जिस तरह से वे विकलांगता की बात कर रहे थे उसमे किसी तरह का कोई तरस का पुट नहीं था, बल्कि एक सहानुभूति की भावना थी।

जब मैंने उनसे पूछा कि क्या विकलांग बच्चों को किसी ख़ास तरह के स्कूल में ही भेजा जाना चाहिए तो पाँचवी क्लास की एक बच्ची ने एक मिनट भी सोचे बिना झट से जवाब दिया कि अगर उन्हें किसी ख़ास स्कूल में भेजा जाता है तो फिर वे "हमारे जैसी कई चीज़ों को नहीं सीख पाएँगे।" इन बच्चों में

जागरूकता और स्वीकार्यता की कमी नहीं थी, अगर समझ में कहीं कोई कमी थी तो उसकी वजह यही थी कि उन्हें कभी किसी विकलांग बच्चे या व्यक्ति को क़रीब से जानने का मौका ही नहीं मिला था।

यह दिलचस्प बात है कि जिस तरह का व्यवहार सार्वजनिक जगहों पर विकलांग लोगों के साथ होता है और जिन मुश्किलों से उन्हें गुज़रना पड़ता है, उससे यही झलकता है कि बड़ी उम्र के लोगों – यानी स्कूल के प्रबन्धक, अध्यापक, रोज़गार देने वाले, सरकारी कर्मचारियों और सामान्यतः लोगों के उनके बारे में विचार कुछ ज़्यादा ही कठोर हैं। उनकी यह अज्ञानता ग़लत सूचनाओं/तथ्यों पर बनी धारणाओं पर आधारित होती है जो कि गहरे पैठ चुकी है।

अब मैं उन दो नेत्रहीन बच्चों की मिसाल पर वापिस आती हूँ, दूसरे बच्चों के साथ उनके समावेशन की कहानी बहुत ही दिलचस्प है। असल में वे दोनों ही शतरंज के मंझे हुए खिलाड़ी थे, और जब उनके साथियों ने उनके साथ खेलना शुरू किया तो उन बच्चों को, जो विकलांग नहीं थे, यह बात एकदम स्पष्ट हो गई कि जितनी उन्होंने कल्पना कर रखी थी, वे दोनों, उससे कहीं बेहतर कर सकते थे। धीरे-धीरे उन्होंने यह भी पाया कि वे दोनों लिख और पढ़ सकते थे (ब्रेल का इस्तेमाल करते हुए); और यह भी कि वे सिर्फ़ पढ़ाई-लिखाई में ही नहीं बल्कि हँसी-मज़ाक में भी वे दोनों बहुत अच्छे थे। धीरे-धीरे जब उनमें दोस्ती हो गई तो फिर यह स्वाभाविक ही था कि जल्द ही वे दोनों लड़के, बाक़ी बच्चों के साथ खेल के मैदान में नज़र आने लगे और स्कूल की दूसरी सारी गतिविधियों में भी हिस्सा लेने लगे।

अन्य स्कूलों के बच्चे आरुषि में संकेत भाषा सीखते हुए

जब हम विकलांग लोगों के (मुख्यधारा में) समावेशन की बात करते हैं, तो सिर्फ़ उन चीज़ों की बात नहीं होनी चाहिए जो वे नहीं कर पाते, बल्कि उन चीज़ों का ज़िक्र होना चाहिए जिन्हें वे कर सकते हैं, भले ही वे (थोड़ा या पूरी तरह) अलग तरीक़े से ही क्यों न हो। और फिर यह सारा कुछ बिलकुल स्वाभाविक और सहजता से होना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि अभी बस एक दशक पहले तक विकलांग बच्चे उन स्कूलों में नहीं जा पाते थे जहाँ बाक़ी सब बच्चे जाते हैं, वे या तो विशेष स्कूल जाते या फिर किसी भी स्कूल में नहीं, हम कह सकते हैं कि भले ही बदलाव छोटा और बिखरा हुआ है पर हुआ ज़रूर है और इस बदलाव को स्वीकार करने में अभी भी कोई बहुत देर नहीं हुई है।

आरुषि ने समावेशन को बढ़ावा देने के लिए, और ख़ासतौर पर बच्चों में, कई नए-नए तरीक़ों का प्रयोग किया है। उन्होंने स्कूल अध्यापकों के क्षमतासंवर्धन से शुरुआत की, उन्हें ब्रेल और संकेत भाषाएँ सिखाईं और साथ-ही-साथ विकलांगता के बारे में उन्हें जागरूक और संवेदनशील बनाया ताकि वे आसानी के साथ विकलांग बच्चों को अपनी कक्षाओं में शामिल कर सकें। इसे आगे बढ़ाते हुए संस्था ने मध्यप्रदेश राज्य पाठ्यपुस्तक निगम द्वारा पहली से लेकर सातवीं तक की सारी पाठ्यपुस्तकों में एक ऐसा पेज जुड़वाने में कामयाबी हासिल की जिसमें विभिन्न तरह की विकलांगता के बारे में जानकारी दी गई है और यह भी बताया गया है कि किस तरह से ऐसे बच्चों को स्कूलों का एक सहज अंग बनाया जा सकता है।

अन्य स्कूलों के बच्चे ब्रेल को समझते हुए

कई सालों से *आरुषि* ने इस बात को प्रोत्साहन दिया है कि स्कूलों में कक्षा के बाहर विकलांग और दूसरे बच्चों को सहज और प्रभावशाली तरीक़े से एक-दूसरे के क़रीब कैसे लाया जाए और उनमें मेल-जोल बढ़ाया जाए। *आरुषि* के बच्चे अपने हमउम्र बच्चों से मिलने के लिए उनके स्कूलों में जाते हैं, और दूसरे नियमित या मुख्यधारा के स्कूली बच्चों को उन बच्चों से मेल-जोल के लिए *आरुषि* में आमंत्रित किया जाता है, जो *आरुषि* में अलग-अलग थेरेपी के लिए, स्कूल रेडीनेस प्रोग्राम के लिए, या अन्य व्यवसायिक थेरेपी और चलने-फिरने की ट्रेनिंग के साथ-साथ ब्रेल, कम्प्यूटर और संकेत भाषा सीखने आते हैं।

ब्रेललिपि की मदद से कहानी सुनाने का एक सत्र

इस तरह की विज़िट की शुरूआत सेंटर के भ्रमण से शुरू होती है। विद्यार्थी कक्षाओं में जाकर ऑटिज्म, सेरिब्रल पाल्सी, नेत्रहीनता, बहरेपन और कम दृष्टि जैसी चुनौतियों वाले बच्चों से मिलते हैं। शहर के विभिन्न स्कूलों से आने वाले यह बच्चे *आरुषि* के बच्चों से मिलते-जुलते हैं, और उन्हें पढ़ते-लिखते, ड्राइंग और अन्य शिल्प-कलाओं का अभ्यास करते, खेलते-कूदते, मस्ती और शारीरिक व्यायाम करते हुए देखते हैं। यह इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वे बच्चे जो इस तरह की चुनौतियों का सामना नहीं कर रहे, यही मानकर चलते हैं कि ऐसी चुनौतियों वाले बच्चे एक मुश्किल, उदासी भरा और अधूरा जीवन ही जीते हैं। जब वे उन्हें हँसी-मज़ाक करते और चुटकले सुनाते हुए देखते हैं तो उन्हें सचमुच ही बहुत हैरानी होती है। इससे वे बहुत कुछ सीखते हैं। वे उन्हें चलते-फिरते और बिना किसी की मदद से अपने सारे काम करते हुए देखते हैं। सभी बच्चे मिलकर खेलते हैं और गीत गाते हैं। वे मिले-जुले समूहों में एक-दूसरे के साथ क्विज़ प्रतियोगिता में भी भाग लेते हैं।

विज़िट पर आए विद्यार्थी यह देखते हैं कि किस तरह से विकलांग बच्चे नई-नई चीज़ों को सीखने और संवाद करने के लिए ब्रेल और संकेत भाषा का इस्तेमाल करते हैं। वे ऑडियोबुक सुनते हैं और नेत्रहीन बच्चों को हैरी पोटर या ऐसी ही किसी कहानी को उसके ब्रेल संस्करण में से पढ़ते हुए देखते हैं! ब्रेल और संकेत भाषा से उनकी एक शुरुआती जान-पहचान भी करवाई जाती है। बहुत छोटी उम्र के बच्चे, जो अभी प्राथमिक कक्षाओं में ही हैं, इन बुनियादी बातों को सीखने में गहरी रूचि दिखाते हैं, और बहुत तेज़ी से उन्हें सीख भी जाते हैं। *आरुषि* में कुछ समय बिताने के बाद जब उनसे यह पूछा जाता है कि क्या आरुषि के बच्चों और उनमें कोई फ़र्क़ है, तो वे कहते हैं कि हाँ फ़र्क़ तो है लेकिन बस इतना ही कि वे नोटबुक और पेंसिल लेकर स्कूल जाते हैं जबकि एक नेत्रहीन बच्चा एक ब्रेल स्लेट और स्टाइलस लेकर जाता है।

स्कूल की एक लड़की ने जब एक नेत्रहीन विद्यार्थी को ब्रेल में छपी किताब से कहानी पढ़कर सुनाते हुए देखा तो वह भावुक हो गई। उसने बोला कि, "मैं बस हैरानी से भरी देख रही थी। यह बच्चे जो देख नहीं सकते कितने प्रसन्न और ख़ुशदिल हैं। और हम, जो देख सकते हैं, वे टीवी ठीक से नहीं चल रहा जैसी छोटी-छोटी बातों पर शिकायत करते हैं।"

चूँकि *आरुषि* के बच्चों को बिना किसी अपवाद के, मुख्यधारा के स्कूलों में दाख़िले के लिए तैयार करवाया जाता है और उन्हें वहाँ दाख़िला मिलता भी है, इसलिए ज़रूरी है कि उन्हें वहाँ ऐसा माहौल मिले जिसमें उनका स्वागत हो, उन्हें स्वीकार किया जाए, और एक ऐसा माहौल जहाँ वे अजनबी महसूस न करें। यदि उनके सहपाठी इस बात को समझ सकें कि वे भी उन्हीं की तरह लिख-पढ़ सकते हैं और अपनी बात समझा सकते हैं,बातचीत कर सकते हैं, भले ही वे उसके लिए दूसरे माध्यम का इस्तेमाल करते हों, तो विकलांग बच्चों की मुख्यधारा में घुलने-मिलने की सम्भावनाएँ कहीं बेहतर हो सकेंगी।

शेफ़ाली त्रिपाठी मेहता लर्निंग कर्व की सह-सम्पादक और यूनिवर्सिटी प्रैक्टिस कनेक्ट की सम्पादक हैं। वे अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी के कई उपक्रमों में सम्पादक के तौर पर अपना योगदान देती हैं। वे तीस साल से भी ज़्यादा समय तक *आरुषि* में स्वयंसेवक के तौर पर काम करती रही हैं। उनसे *shefali.mehta@apu.edu.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : बलराम बोधि **पुनरीक्षण** तथा **कॉपी एडीटिंग :** स्वाति भदौरिया

कक्षा में पुस्तकों का कोना

शहनाज़ डीके

एक शिक्षिका के तौर पर जब मैंने एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ाना प्रारम्भ किया तो मुझे कक्षा में पढ़ाने में बहुत मज़ा आता था! मुझे हमेशा यही लगता था कि मेरा पढ़ाया गया पाठ सभी बच्चों को बहुत अच्छी तरह से समझ में आ जाता है क्योंकि परीक्षा में सभी बच्चे अच्छे अंक लाते थे। ऐसा शायद इसलिए था क्योंकि मैं एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ाती थी जहाँ सारे बच्चे पढ़े-लिखे परिवारों से आते हैं। वहाँ कुछ साल काम करने के बाद मैं एक सरकारी अनुदान प्राप्त संस्था में आ गई जहाँ पर पढ़ने वाले बच्चे सभी तरह के परिवारों से आते थे।

इस संस्था में पढ़ाते हुए कुछ ही समय में मुझे लगा कि बच्चे या तो मेरी बात समझ नहीं पा रहे हैं या परीक्षा की तैयारी अच्छी तरह से नहीं कर रहे हैं। मैंने परीक्षा के पहले टेस्ट लेने भी शुरू कर दिए। पूरे कोर्स का रिवीज़न भी करवाया लेकिन परिणाम में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। कुछ साल ऐसे ही निकल गए परन्तु मैं पकड़ ही नहीं पा रही थी कि कमी कहाँ है।

धीरे-धीरे मेरी समझ में आने लगा कि यह बच्चे कक्षा पाँच में आ जाने पर भी पढ़ना नहीं सीख पाते हैं और इसलिए पढ़ी गई किसी भी बात को न तो समझ पाते हैं और न ही याद रख पाते हैं। अब मैं पढ़ने के कौशल में कमज़ोर बच्चों को रोज़ एक पेज पढ़ने को देती अगले दिन फिर उनसे पढ़वाती। परन्तु हर नए पेज पर उनकी गति फिर धीमी पड़ जाती। पढ़े गए वाक्य का अर्थ पूछने पर बच्चे कुछ नहीं बता पाते।

इस तरह कार्य करते हुए मुझे यह तो समझ आने लगा था कि बच्चों को एक-एक पेज पढ़ाने का कोई फ़ायदा नहीं हो रहा है क्योंकि वे उसे बोझ समझकर ज़बरदस्ती पढ़ते हैं! यदि उनके पास पढ़ने के लिए कुछ मज़ेदार हो और उसमें उनकी रुचि हो तो वे बिना कहे अपने-आप पढ़ेंगे। उनसे पूछने पर पता चला कि उनके पास तो केवल उनकी पाठ्यपुस्तकें हैं, किसी अन्य प्रकार की किताबें उनके घर पर नहीं हैं। मैंने लाइब्रेरी में जाकर बच्चों के पढ़ने के लिए किताबें लानी चाही तो जवाब मिला कि छोटे बच्चे किताबें फाड़ देते हैं इसलिए हम नहीं दे सकते। मैं अपने घर से कुछ पुरानी किताबें स्कूल ले गई और बच्चों को कहानियाँ पढ़ने के लिए दीं। बच्चे उनको मज़े से पढ़ने लगे क्योंकि उन्होंने पहले कभी ऐसी किताबें नहीं पढ़ी थीं। जिन्हें पढ़ना नहीं आता था वे भी किताबों को उलट-पुलटकर देखने लगे। मेरे दिमाग़ में विचार आया कि क्यों न पुस्तकालय या किताबों का कोना कक्षा में ही चलाया जाए।

स्कूल की लाइब्रेरी की पुरानी किताबें जिन्हें रद्दी में बेचा जाना था, मैंने ले लीं। इन किताबों के फटने पर इन्हें वापस जमा नहीं कराना था। *नन्दन, चंपक, बालहंस* आदि छोटी-छोटी कहानियों वाली पत्रिकाएँ मेरे कक्षा-पुस्तकालय की सबसे पहली किताबें थीं। इन्हें कक्षा की अलमारी में रख दिया और बच्चों को पढ़ने की खुली छूट दे दी। उनसे यह शर्त रखी कि वे अपना कक्षा-कार्य करने के बाद ख़ाली समय में कभी भी उन पत्रिकाओं को पढ़ सकते हैं। शुरुआत में लड़ाई-झगड़े हुए, पत्रिकाएँ फट गईं। धीरे-धीरे कक्षा में ही बच्चे व्यवस्थित रूप से पढ़ने लगे। अब पत्रिकाएँ कम होने लगीं यानी उन्हें पढ़ने के लिए घर ले जाया जाने लगा। अब मुझे यह देखना ज़रूरी हो गया कि कौन पढ़ रहा है, किसकी रुचि बढ़ती जा रही है और जो बच्चे अभी ठीक से नहीं पढ़ पाते हैं वे क्या कर रहे हैं। कक्षा में पत्रिकाओं को आए दो-तीन महीने हो गए थे परन्तु कुछ बच्चे अभी भी केवल चित्र ही देख रहे थे! लेकिन मुझे यह देखकर अच्छा लगा कि कुछ ही समय में वे धीरे-धीरे शब्दों को पहचानने और पढ़ने लगे। यानी मेरा सोचना सही था कि बच्चों को कुछ रुचिकर और नया पढ़ने को मिले तो वे परीक्षा की घबराहट से निकलकर पढ़ने का मज़ा लेंगे।

साल भर तक इस तरह कक्षा में ही उन्हें पढ़ने के लिए पूरी छूट मिलती रही और बच्चे अपने साथियों की मदद से, अपनी ग़लतियों को स्वयं सुधारते हुए धीरे-धीरे पढ़ने लगे। उनकी पढ़ने की गति जब ठीक हो गई तो उनकी समझ को जाँचने के लिए पूरी कक्षा के बच्चों का एक क्लोज़ टेस्ट और गणित के इबारती सवालों का टेस्ट लिया गया। दोनों ही टेस्ट का उद्देश्य यह जाँचना था कि क्या बच्चे समझ के साथ पढ़ पाते हैं और उस समझ के आधार पर प्रश्नों के उत्तर दे पाते हैं या नहीं। इन दोनों टेस्ट के परिणाम काफ़ी सकारात्मक थे! इससे यह स्पष्ट था कि जो बच्चे अपनी पाठ्यपुस्तकों से चार-पाँच सालों में भी पढ़ना नहीं सीख सके थे, वे बच्चे अपनी पसन्द की पुस्तकों से, स्वयं प्रयास करते हुए साल भर में ही पढ़ना सीखने में सफल हुए हैं और पढ़ी गई बात उनकी समझ में भी आती है।

इस प्रयोग की सफलता के चलते विद्यालय की सभी कक्षाओं में पुस्तकों का कोना चलाया जाने लगा। कक्षा के स्तर एवं

विद्यार्थियों की रुचि के अनुसार कक्षाध्यापक पुस्तकों का चयन करते और उन्हें पुस्तकालय से इश्यू करवाकर अपनी कक्षा में रख देते जिससे बच्चे ख़ाली समय मिलने पर उनका भरपूर उपयोग करते थे। इन पुस्तकों को समय-समय पर बदला जाता था जिससे बच्चों को कई प्रकार की पुस्तकों को पढ़ने और विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित बातों को जानने का मौक़ा मिलता। बाद में धीरे-धीरे बच्चों ने विभिन्न कार्यक्रमों और प्रतियोगिता के लिए पुस्तकालय का उपयोग करना शुरू किया जिससे किताबों की ओर उनका रुझान बढ़ा और इसका प्रभाव उनके परीक्षा परिणामों पर भी दिखाई देने लगा।

कुछ सालों बाद मैं सरकारी विद्यालय में चली गई। वहाँ पर कक्षा 5 से 8 तक के बच्चों की किताब पढ़ने की स्थिति और भी ख़राब थी। वहाँ भी मैंने पुस्तकालय प्रभारी से बात करके और कई प्रकार की समस्याओं से निपटते हुए अपने स्तर पर बच्चों को पुस्तकें उपलब्ध करवाना और उनका पढ़ना-पढ़ाना जारी रखा।

पुस्तकों का कोना बनाने का उद्देश्य है बच्चों को दुनिया के बारे में सीखने में मदद करना और पाठ्यपुस्तकों एवं कक्षा के बाहर की दुनिया के अपने ज्ञान का विस्तार करना! अन्य पुस्तकों को पढ़ने से उन्हें यह एहसास होता है कि वे अपने आस-पास की दुनिया को समझने के लिए, जब चाहें इस कौशल का इस्तेमाल कर सकते हैं।

शहनाज़ डीके पिछले 25 वर्षों से शिक्षण कर रहीं हैं एवं वर्तमान में वे शासकीय कन्या उच्च माध्यमिक विद्यालय गोदुन्दा, उदयपुर में कक्षा 6-8 में गणित एवं विज्ञान विषय पढ़ाती हैं। वे बच्चों की सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को समझने में रुचि रखती हैं। उनसे *shehnazakirdk@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

कक्षा के बाहर : सीखने के अवसर

सौरभ सोम और अर्चना द्विवेदी

वास्तविक संसार कक्षा की चार-दीवारी के बाहर है। इस बात को समझते-बूझते हुए भी जब स्कूल और सारी-की-सारी शिक्षा प्रणाली बच्चों की शिक्षा को चार-दीवारी के भीतर समेटने की कोशिश करते हैं तो ख़ुद को ही सीमित करते हुए से प्रतीत होते हैं। अगर शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को भविष्य के लिए तैयार करना है तो शिक्षा, कक्षा की चार-दीवारी के भीतर सिमटकर कैसे रह सकती है (डीवी, 1916)? एक मुक्तिदायी शिक्षा विश्वसनीय और विद्यार्थियों के जीवन के लिए प्रासंगिक होनी चाहिए। सवाल उठाने वाले किसी भी शिक्षाशास्त्र में, विद्यार्थी के ज्ञान को भी एक जगह दी जानी चाहिए, अध्यापक और विद्यार्थी दोनों को ही वहाँ साथ-साथ सीखने वालों के रूप में स्थान दिया जाना चाहिए (फ्रेरे,1968)।

विद्यार्थियों को कक्षा के बाहर ले जाना एक अतिरिक्त गतिविधि के रूप में देखा जाता है। इन गतिविधियों को ज्ञान-निर्माण के केन्द्र में रखने की बजाए कक्षा में पढ़ाई गई विषयवस्तु के महज़ एक विस्तार के रूप में ही देखा जाता है। इस उपागम से पैदा हुई कमी कई विषयों के शिक्षण में साफ़-साफ़ दिखाई देती है। *'लर्निंग विदाउट वर्डन'* (भारत सरकार, 1992) में इस बात की तरफ़ स्पष्ट संकेत किया गया है कि भारतीय स्कूलों में कक्षा का माहौल बाहरी जगत से कितना कटा हुआ है। एनसीएफ़ 2005 में भी कक्षा-कक्ष को बाहरी दुनिया के साथ जोड़ने की सिफ़ारिश की गई है। इसमें प्रोजेक्ट कार्य सर्वेक्षण, अवलोकन, आँकड़े इकट्ठे करने, थीम आधारित शिक्षण, समूह-कार्य और कई तरह के आकलन जिसमें स्व-आकलन एवं अपने साथियों के आकलन को भी नियमित शिक्षणशास्त्र का हिस्सा बनाने का सुझाव दिया गया है।

हालाँकि एनसीएफ़ 2005 आने के बाद परिदृश्य काफ़ी बदला है, और प्रोजेक्ट अब स्कूली पाठ्यक्रम का एक आम हिस्सा हो गए हैं, उनकी संख्या भी काफ़ी बढ़ी है (सोम और नटराजन,2013), लेकिन अभी भी उन्हें उस दिशा में ले जाने की ज़रूरत है जहाँ वह सचमुच ही विद्यार्थियों के लिए सीखने का एक अर्थपूर्ण मौक़ा बन सकें (सोम 2013)। और इस बात की भी ज़रूरत है कि उन्हें प्रोजेक्ट में दिए गए अन्य प्रस्तावों के साथ जोड़ा जाए (सोम और नटराजन, 2013)। विद्यार्थियों को कक्षा के बाहर ले जाकर किसी ख़ास विषय से जोड़कर पढ़ाना, विद्यार्थियों को सीखने के लिए एक समृद्ध सन्दर्भ प्रदान करता है।

इस लेख में हम तीसरी से सातवीं तक के बच्चों को पढ़ाए जाने वाले विज्ञान और पर्यावरण अध्ययन के कुछ टॉपिक के अध्यापन से जुड़े अपने अनुभवों को आपके सामने रखेंगे। पढ़ाए गए विभिन्न टॉपिक को अलग-अलग इकाई के तौर पर प्रस्तुत करेंगे। हर इकाई में हम उसके पीछे की प्रेरणा, बच्चों की संख्या और उनकी कक्षा, विषय को पेश करने के तरीक़े, पढ़ाने का क्रम, उन गतिविधियों में विद्यार्थियों ने किस तरह से प्रतिभाग किया और उससे हमने क्या सीखा और आगे के लिए जो अन्तर्दृष्टि प्राप्त की इस सबका एक ख़ाका यहाँ पर प्रस्तुत करेंगे।

कचरे को इकट्ठा करना और अलग-अलग करना

कचरा प्रबन्धन की मुख्य बात उसे इकट्ठा करना और उसका पृथक्करण ही है, जिसे कई तरीक़ों से किया जा सकता है : इस्तेमाल के हिसाब से, उसके स्रोत के आधार पर, अपघटन की प्रकृति, या फिर जिन चीज़ों से वह बना है, या किसी ख़ास वस्तु के आधार पर। कचरा इकट्ठा करने और वर्गीकृत करने की गतिविधि बच्चों के लिए कई मायनों में सीखने का एक अर्थपूर्ण अनुभव हो सकता है।

कचरा इकट्ठा करते हुए विद्यार्थी ख़ुद सीधे तौर पर कचरे के सम्पर्क में आते हैं और देखते हैं कि मामला कितना गम्भीर है, सड़ी-गली सब्ज़ियों से चिपकी प्लास्टिक की थैलियाँ वगैरह। और वे यह भी समझ पाते हैं कि ख़ुद उनके कामों से कितना कचरा पैदा होता है। जब वे देखते हैं कि वे ख़ुद ही कचरा पैदा कर रहे हैं तो यह अहसास उन्हें वातावरण के प्रति ज़िम्मेदारीपूर्ण फ़ैसले लेने के लिए प्रेरित कर सकता है। इसी तरह कचरे को अलग-अलग करते हुए भी उन्हें बहुत सारी नई चीज़ें सीखने को मिलती हैं। मसलन वे यह सीखते हैं कि कचरे के किसी बड़े ढेर से तरह-तरह की चीज़ों को उनकी विशेषताओं और आगे होने वाले उनके इस्तेमाल के आधार पर अलग-अलग कैसे करना है।

शुरू में हमने तीसरी-चौथी कक्षा के बच्चों को कहा कि वे स्कूल के खेल के मैदान को साफ़ करें और जो भी कचरा मिले

उसका एक जगह पर ढेर लगाते जाएँ। फिर सामूहिक बातचीत के बाद विद्यार्थियों ने उस सारी सामग्री को अलग-अलग वर्गों में बाँटने का प्रस्ताव रखा, जिसमें पत्ते-टहनियाँ और घास-फूस, मिट्टी-पत्थर, प्लास्टिक-पोलीथिन और धातु की बनी चीज़ों को अलग-अलग ढेरियों में रखना था। विद्यार्थियों ने प्लास्टिक और पॉलीथिन को छोड़कर बाक़ी हर चीज़ को फिर से इस्तेमाल करने के तरीक़े ढूँढ़ निकाले।

आस-पास की चीज़ों और पेड़-पौधों के बारे में पढ़ाना

पहली कक्षा की अँग्रेज़ी की पाठ्यपुस्तक में एक पाठ पेड़ों और पौधों के बारे में था। चूँकि अपने वातावरण के हिस्से के तौर पर बच्चे पेड़-पौधों से परिचित थे तो इस पाठ के बहाने उनके वातावरण से उपजे ज्ञान को स्कूली ज्ञान से जोड़ने का एक मौक़ा मिला। कक्षा में उस पाठ को पढ़ाते और उस पर चर्चा करते हुए यह महसूस किया गया कि अगर उन्हें कक्षा से बाहर ले जाकर सीधे अनुभव का मौक़ा दिया जाए तो उनके सीखने में बहुत कुछ नया जुड़ सकता है।

पौधों के अलग-अलग हिस्सों के बारे बताने का एक तरीक़ा तो यह भी हो सकता है कि उनके रेखाचित्र बनाए जाएँ और फिर नीचे उनके नाम लिख दिए जाएँ, जिस तरह से किताब में किया गया था। लेकिन यह पेड़ों का वास्तविक निरूपण नहीं होगा। हमने विद्यार्थियों को यह मौक़ा दिया कि वे बाहर जाकर पेड़ों को क़रीब से देख सकें, उनकी छानबीन कर सकें, हरी-हरी पत्तियों से लदी उनकी टहनियों को छू सकें और महसूस कर सकें। इसने उन्हें पाठ्यपुस्तक के चित्र और उनके उस जीवन्त अनुभव के बीच जो फ़र्क था, उसे बारीक़ी से देखने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने ख़ुद ही यह पता लगाया कि पेड़ के तने के बीचों-बीच एक बड़ी-सी कोटर है और यह अन्दाज़ा लगाया कि ज़रूर उसमें कुछ जानवर रहते होंगे। एक विद्यार्थी हैरानी के मारे चिल्ला रहा था कि एक चींटी पेड़ पर चढ़ रही थी, तो दूसरे ने उसे टोका कि वह *चढ़* नहीं बल्कि *रेंग* रही थी, यह दोनों ही शब्द कुछ ही समय पहले कक्षा में पढ़ाए गए थे। उन्होंने पेड़ों के नीचे खिले फूलों को देखा और यह भी कि जड़ें मिट्टी के ऊपर भी नज़र आ रही थीं। तो ज़रूरी नहीं है कि जड़ें हमेशा ज़मीन के नीचे हों और बाहर से दिखाई ही न दें! उनका ध्यान पेड़ पर बने एक पक्षी के घोंसले पर भी गया। वह यह पता लगाने के लिए बहुत उत्साहित थे कि कक्षा में हुई चर्चा और सामने की सच्चाई में क्या कुछ मिलता-जुलता था।

उन्हें देखकर यह साफ़ पता चलता था कि इस तरह कक्षा के बाहर लाए जाने से बच्चों में प्रकृति और उसकी विविधता की सराहना का भाव गहरा हुआ। वे ख़ासतौर पर पेड़ों की बनावट को और ज़्यादा गहराई से महसूस करने लगे थे। जब बच्चों से पूछा गया कि उन्होंने वहाँ क्या-क्या देखा तो उन्होंने पूरे उत्साह से सभी सवालों के जवाब दिए, उन बच्चों ने भी जो बाहर जाने से पहले कक्षा में बिलकुल चुप रहा करते थे।

वर्मी-कम्पोस्टिंग (केंचुओं की खाद) का अध्ययन

वर्मी-कम्पोस्टिंग का अध्ययन करना रीसाइक्लिंग की प्रक्रिया को समझने का ही एक हिस्सा है। इसे एनसीआरटी की तीसरी और चौथी कक्षा की किताबों में भी शामिल किया गया है। विद्यार्थियों को यह तो पता था कि उनके स्कूल में वर्मी-कम्पोस्टिंग के लिए एक गड्ढा बना हुआ है, लेकिन इस बारे में उन्हें कुछ पता नहीं था कि वह कैसे और क्या काम करता है और उस सारी प्रक्रिया में केंचुओं की क्या भूमिका रहती है। जब *केंचुआ-खाद* शब्द से उनका परिचय हुआ तो उनका सवाल था कि क्या केंचुए खाद बनाते हैं? शुरू-शुरू में विद्यार्थियों को केंचुओं के बारे में बहुत ही कम पता था, वह नहीं जानते थे कि वह दिखने में कैसे लगते हैं, कहाँ पर रहते हैं और उनके क्या उपयोग हैं। वर्मी-कम्पोस्टिंग में केंचुओं की क्या भूमिका होती है, यह बात उन्हें अच्छी तरह से समझ में आ जाए इसके लिए हम उन्हें एक गतिविधि के लिए कक्षा से बाहर ले गए। सबसे पहले तो उन्हें हिन्दी और अँग्रेज़ी में वर्मी-कम्पोस्टिंग पर एक पन्ने का लेख पढ़ने को दिया गया। जब उनसे पूछा गया कि केंचुए हमें कहाँ मिलेंगे तो सभी का जवाब था कि 'मिट्टी में'। फिर उनसे चार-पाँच बच्चों के ग्रुप बनाने को कहा और हर ग्रुप को प्लास्टिक का एक पारदर्शी डिब्बा दिया और उनसे कहा कि खेतों से मिट्टी भरकर लाएँ जिसमें ज़्यादा कंकर-पत्थर न हों। अब मज़े की बात यह थी कि मिट्टी में से हमें केंचुए नहीं मिले, लिहाज़ा उन्हें वर्मी-कम्पोस्ट के ढेर से लाना पड़ा।

विद्यार्थियों ने बोरी पर रखे केंचुओं को देखा, पहले नंगी आँखों से और फिर लैंस से। फिर विद्यार्थियों ने बताया कि केंचुए के आँख, कान और हाथ-पाँव कुछ भी नहीं होता। उन्होंने यह भी नोट किया कि कैसे चलते वक्त वह अपने शरीर को फैला लेते हैं। उन्होंने यह भी निष्कर्ष निकाला कि धूप में या सूखी जगह पर रखने से केंचुए का शरीर सूख जाता है।

इस तरह अच्छी तरह देखने के बाद केंचुओं को तौलकर पहले दिए गए डिब्बों में रख लिया गया। उन डिब्बों को घास और खरपतवार से भरा गया और विद्यार्थियों से कहा गया कि उनमें नियमित रूप से घास तथा केले के छिलके वगैरह डालते रहें।

यह प्रक्रिया दो महीने तक जारी रही। और उसके बाद जब डिब्बों से वह सामग्री निकाली गई तो उसमें केंचुओं की संख्या बहुत बढ़ गई थी और घास-फूस और छिलकों की जगह अपघटित सामग्री ही बची थी। इससे हमें इस बारे में बात

करने का मौक़ा मिला कि कैसे केंचुए फालतू चीज़ों को कम करने में मदद करते हैं और वातावरण के लिए एक हितकारी भूमिका निभाते हैं।

जल परियोजना

तीसरी और चौथी कक्षा की पाठ्यपुस्तकों के दो अध्यायों को, जो पानी के बारे में ही थे, एक साथ जोड़कर पढ़ाया गया। हमने उन अध्यायों में सर्वे के लिए दिए गए सवालों के आधार पर एक वर्कशीट तैयार की जिसमें इन मुद्दों को शामिल किया गया - पानी का लेखा-जोखा (वाटर-ऑडिट), उसका उपयोग, पानी की मात्रा का अनुमान, पानी के उपयोग और बर्बादी को कम करने के जल-संरक्षण और अपने घरों और स्कूलों में पानी की बर्बादी को कम करने के उपाय सुझाना।

विद्यार्थियों ने पानी के हिसाब-किताब, सर्वेक्षण (नलों की संख्या, कितने नल लीक होते हैं) और उसके माप (जैसे एक मग कितने चम्मच पानी से भरता है) से जुड़ी उस वर्कशीट को भरा। उन्होंने सम्बन्धित लोगों से इस बारे में पूछताछ की, जैसे कि उन लोगों से जो शौचालयों का रख-रखाव करते थे। हमने देखा कि कक्षा में उदासीन रहने वाले और कक्षा की गतिविधियों को करने में संकोच करने वाले विद्यार्थियों ने भी इस काम में सक्रियता से भाग लिया और वर्कशीट को पूरा किया।

जैव विविधता के बारे में सीखना

जैव विविधता के बारे में सीखना-सिखाना, और इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है उसके बारे में संवेदनशील होना और उसके महत्त्व को समझना, यह सारा कुछ सिर्फ़ प्रकृति से सीधे सम्पर्क में ही सीखा जा सकता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए हमने कक्षा के बाहर की गतिविधियों को, कक्षा में चलने वाली चीज़ों के साथ जोड़कर रखा ताकि कक्षा के भीतर सीखने की प्रक्रिया को और मज़बूत और गहरा बनाया जा सके। यहाँ हम इन बातों पर चर्चा करेंगे कि कैसे हमने निम्नलिखित विषयों को अपने विद्यार्थियों के सामने रखा।

पक्षियों का अवलोकन

पक्षियों से जान-पहचान क्योंकि एनसीआरटी की तीसरी और चौथी कक्षा की पाठ्यपुस्तकों का एक हिस्सा है, इसलिए विद्यार्थियों को पक्षियों की तस्वीरों वाले कार्ड दिए गए और उन्हें स्कूल के भीतर उन पक्षियों का पता लगाने के लिए कहा गया। और उनसे अपने आस-पास के इलाकों में विभिन्न पक्षियों के घोसलों और उनके अण्डों का पता लगाने और उस पर एक रिपोर्ट तैयार करने के लिए भी कहा गया। बाद में विद्यार्थियों ने अपने अवलोकनों के आधार पर पक्षियों के घोंसलों और अण्डों के मॉडल बनाए।

पौधों का सर्वेक्षण

छठी कक्षा के विद्यार्थियों को अलग-अलग तरह के पौधों और उनके अंगों के बारे में पढ़ाने के लिए हमने प्रोजेक्ट आधारित शिक्षणशास्त्र को अपनाया। इन विद्यार्थियों ने पूरे स्कूल का सर्वेक्षण किया और पौधों की विभिन्न प्रजातियों का और हर प्रजाति के पौधों की जनसंख्या का पता लगाया, उनकी लम्बाई नापी, शक्ति का अनुमान लगाया, पौधों की बनावट और उनके अंगों फूल, फल एवं बीजों के बारे में लिखा। पौधों का वर्गीकरण किया (जड़ी-बूटियाँ, झाड़ियाँ, पेड़, मोनोकोट, डायकोट वगैरह) और उनके विभिन्न अंगों (पत्ते के शिराविन्यास और उसकी किनारी के प्रकार के आधार पर) का भी। हमने काफ़ी बड़ी संख्या में पौधों के नमूने भी इकट्ठे किए, पत्तों की शिराओं और जड़ों की बनावट के आपसी सम्बन्धों का पता लगाया और इस बात का भी कि उनके बीज-पत्र कितनी तरह के होते हैं। पाँचवीं कक्षा के बच्चों के साथ भी पौधों के विभिन्न हिस्सों का पता लगाने और उनके वर्गीकरण करने के लिए एक छोटी-सी गतिविधि की गई।

फफूंदी का अवलोकन

सातवीं कक्षा की कक्षा में अलग-अलग तरह के जीवों की जान-पहचान करवाते हुए विद्यार्थियों को बाहर खुले मैदानों में ले जाया गया और उनसे कहा गया कि वे फफूंदी की अलग-अलग क़िस्मों का पता लगाएँ। इस तरह उन्होंने फफूंदी की पाँच क़िस्मों का पता लगाया। उन्हें यह बताया गया था कि फफूंदी की बाहरी सरंचना का अवलोकन कैसे करना है।

कीट-पतंगों का सर्वेक्षण

वातावरण के प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए कीट-पतंगों के बारे में जानना भी बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि खाद्य-शृंखला में इन कीट-पतंगों की एक बहुत अहम भूमिका रहती है और वह परागण जैसे कई तरीक़ों से वातावरण के सन्तुलन को बनाए रखते हैं। विद्यार्थियों ने पूरे स्कूल में पाए जाने वाले विभिन्न तरह के कीड़ों को पहचानना सीखा और स्कूल के विभिन्न हिस्सों में पाए जाने वाले हर तरह के कीट-पतंगों की सँख्या का भी पता लगाया।

आक्रामक प्रजातियों की पहचान और उनसे बचाव

आक्रामक प्रजातियों की बेतहाशा वृद्धि मनुष्य जाति के लिए वातावरण की एक बड़ी समस्या है। इसलिए **आक्रामक** प्रजातियों के फैलाव को कम करने के लिए उनकी पहचान के बारे में जानकारी हासिल करना और उनके क्रिया-कलापों के बारे में जागरूक होना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पाँचवीं से

आठवीं तक के बच्चों को स्कूल के मैदान में पौधों की तीन ऐसी प्रजातियों की पहचान करने और उन्हें उखाड़ फेंकने के लिए कहा गया। विद्यार्थियों ने इस बात पर भी ध्यान दिया कि कुछ प्रभावी प्रजातियाँ प्रचुर मात्रा में फैली हुई थीं। हमने उनके साथ इस बात पर चर्चा की कि पशु भी इन पौधों को नहीं खाते और साथ ही उन विशेषताओं पर बात की जिसकी वजह से वे अन्य पौधों पर हावी हो जाते हैं।

सीख और आगे बढ़ने का रास्ता

हमने देखा है कि विद्यार्थियों को कक्षा से बाहर ले जाने से सीखने का एक समृद्ध परिप्रेक्ष्य प्राप्त होता है। विद्यार्थी उसमें गहरी रूचि लेते हैं और तेज़ी से सीखते हैं। एनसीआरटी की किताबें और 2005 का एनसीएफ़ भी यही सिफ़ारिश करते हैं कि ऐसे तरीक़ों को कक्षा में अपनाया जाना चाहिए। संसार के बारे में किताबों में दी गई जानकारियाँ वास्तविक दुनिया से सीधे-सीधे मेल नहीं खातीं। विद्यार्थियों को कक्षा की चार दीवारी से बाहर ले जाना उन्हें असल संसार से जोड़ता है, दुनिया की सच्ची समझ पैदा करता है और सीखने में मदद करता है। विद्यार्थी अपने अनुभवों और अवलोकनों की, किताबों में दी गई जानकारी से तुलना कर सकते हैं और अपने ज्ञान और समझ को बढ़ा सकते हैं।

हमें इस बात का पूरी तरह अहसास है कि इस तरह के काम के लिए बहुत ही अच्छी तरह से सोची-विचारी गई शिक्षण योजनाएँ बनाना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसके अलावा अलग-अलग सामग्रियों और कौशलों को, वर्कशीट या फिर आँकड़ा-संग्रह के प्रारूप के साथ जोड़ना या एकीकृत करना भी ज़रूरी है। इस सिलसिले में स्कूल के टाइम-टेबल को लचीला बनाना और कक्षाओं का समय एक घण्टे या उससे ज़्यादा रखना, जिनमें लिखना, आँकड़े इकट्ठे करना, उन्हें सारिणीबद्ध करना और उनका विश्लेषण करना शामिल हो, भी ज़रूरी है। हमने यह भी देखा कि कक्षा-कक्ष के अन्दर और बाहर की प्रक्रियाओं को अलग-थलग करके देखने के बजाए उन्हें एक-साथ जोड़ना और एक-दूसरे का पूरक बनाना बेहद महत्त्वपूर्ण है।

आभार :

हम अपने सहयोगी खारुल निशा और दिनेश बर्तवाल को *'अपशिष्ट संग्रह और पृथक्करण'* नामक इकाई पर दिए गए उनके सुझावों के लिए धन्यवाद देते हैं और उन सारे विद्यार्थियों का भी शुक्रिया अदा करते हैं जिन्होंने उस प्रक्रिया में हिस्सा लिया।

सौरभ सोम और **अर्चना द्विवेदी** अज़ीम प्रेमजी स्कूल, मातली, उत्तरकाशी में पढ़ाते हैं। सौरभ से *saurav.shom@azimpremjifoundation.org* पर और अर्चना बर्तवाल से *archana.dwivedi@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : बलराम बोधि **पुनरीक्षण** तथा **कॉपी एडीटिंग :** स्वाति भदौरिया

चार दीवारियों से परे : प्रोजेक्ट आधारित शिक्षा की एक मिसाल

शुभ्रा मिश्रा, दिनेश बर्तवाल, नरेन्द्र कोटियाल, वीरेन्द्र नेगी

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, जिसे आमतौर पर एनसीएफ़ 2005 (एनसीईआरटी, 2005) के नाम से जाना जाता है, सीखने और सिखाने के मामले में एक निर्माणवादी नज़रिया अपनाए जाने पर ज़ोर देती है। दस्तावेज़ थीम आधारित एवं एकीकृत पाठ्यक्रम पर आधारित (Thematic and subject- integrated) प्रोजेक्ट के सुझाव देता है हालाँकि एनसीएफ़ 2005 के बाद से प्रोजेक्ट का चलन बढ़ा है, लेकिन अभी भी इस प्रस्ताव को आधे-अधूरे मन से ही लागू किया जाता है। सोम (2013) एवं सोम और नटराजन (2013) शोध-पत्रों में एनसीएफ़ 2005 के सुझावों के मद्देनज़र पढ़ाने के प्रोजेक्ट आधारित मॉडल को प्रस्तावित किया गया है।

प्रोजेक्ट आधारित शिक्षण में बहुत सारी चीज़ें शामिल रहती हैं, जैसे कि वास्तविक दुनिया के सन्दर्भ, प्रामाणिक समस्याएँ, प्रामाणिक आकलन, विद्यार्थियों का समूह कार्य ख़ासतौर पर बाहरी दर्शकों के सामने (थामस, 2000)। दिलचस्प बात यह है कि एनसीएफ़ 2005 व्यवस्थागत मुद्दों की पहचान करते हुए माँग करता है कि स्कूल के टाइम-टेबल को लचीला और विद्यार्थियों की सीखने की ज़रूरतों के अनुसार बनाया जाए, न सिर्फ़ समान विषय के बल्कि अलग-अलग विषयों के शिक्षकों के बीच भी आपसी सहयोग और सह–शिक्षण के मौक़े हों और सारा स्कूल इस प्रक्रिया में उनकी मदद करे (एनसीईआरटी 2005)।

नीति-निर्देशों को ध्यान में रखते हुए और विद्यार्थियों की शिक्षा में गहराई लाने के लिए 2018-19 के शैक्षणिक सत्र के दौरान हमने तीसरी से आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए थीम आधारित प्रोजेक्ट की योजना बनाई और उसे लागू किया। इन परियोजनाओं में सोम और नटराजन (2013) और थामस (2000) के द्वारा प्रस्तावित प्रोजेक्ट आधारित शिक्षा के कई तत्वों को शामिल किया गया। इसमें बहुत सारी बातें शामिल हैं जैसे शिक्षा को वास्तविक दुनिया के मसलों के साथ जोड़ना, वास्तविक संसार से आँकड़े और सामग्री इकट्ठी करना, प्रोजेक्ट को पूरा करते हुए पाठ्यक्रम की मूल अवधारणाओं को सीखना, विद्यार्थियों के बीच सामूहिक तौर पर काम करने के मौक़े पैदा करना, पूरी कक्षा के लिए साझा प्रोजेक्ट, ठोस आकलन, विषयों का एकीकरण, जाँच-पड़ताल और मसलों के हल ढूँढ़ने को प्रक्रिया का हिस्सा बनाना, विभिन्न विषयों के अध्यापकों में सहयोग, शिक्षण इकाइयों के लिए रोज़ाना की योजना, लचीले टाइम-टेबल और कक्षा के समय को बढ़ाना। इस योजना में मॉडल, प्रेजेंटेशन, प्रयोगात्मक डिज़ाइन आदि के रूप में मूर्त परिणाम भी शामिल थे। इन सबको स्कूल के *बाल शोध मेले* में बाहरी दर्शकों के सामने रखा जाना था। इस लेख में हम पाँचवीं और सातवीं कक्षा के बच्चों के साथ किए अपने काम के बारे में बात करेंगे।

स्कूल का मॉडल बनाना

हमने पाँचवीं कक्षा के 27 बच्चों के साथ इस प्रोजेक्ट पर काम किया। इस प्रोजेक्ट में एनसीईआरटी की गणित की किताब के तीन अध्याय - नक़्शे, ठोस चीज़ें और अनुमान, क्षेत्र और परिधि को एक साथ जोड़ा गया था। इस विचार को सोम, शास्त्री, ख्न्याकरी और नटराजन (2011) द्वारा विकसित की गई एक प्रोजेक्ट आधारित शिक्षण इकाई से लिया गया था। उनके काम में छठी कक्षा के विद्यार्थियों के ड्राइंग और डिज़ाइन के काम को विस्तार से पेश किया गया है, जिसमें उन्हें एक निश्चित लम्बाई-चौड़ाई वाले मैदान पर प्रस्तावित बच्चों के पार्क के लिए खेल-सामग्री के स्केल्ड मॉडल तैयार करने थे।

पहली बैठक में हमने नक़्शों और रेखा-चित्रों के बारे में बातचीत की। बच्चों को समझाया गया कि उन्हें क्या करना है, और उन्हें कक्षा के कमरों समेत पूरे स्कूल का एक रेखा-चित्र बनाने के लिए कहा गया, साथ-ही-साथ उन्हें पूरे विद्यालय परिसर का एक स्केल्ड मॉडल (scaled model) भी तैयार करना था।

दो-दो विद्यार्थियों के ग्रुप बनाए गए। हरेक ग्रुप ने पूरे स्कूल के इलाके का सर्वेक्षण किया, अलग-अलग जगहों पर गए और स्कूल के रेखा-चित्र बनाए। पहले दिन सिर्फ़ चार ग्रुप ही उस

काम को पूरा कर सके, लेकिन दूसरे दिन जब विद्यार्थियों ने उसी काम को दोहराया तो लगभग दस ग्रुप उसे पूरा करने में कामयाब हो गए। और जो ग्रुप उस काम पूरा नहीं कर सके थे उन्हें उन दूसरे ग्रुपों में मिला दिया गया जिन्होंने अपना काम पूरा कर लिया था ताकि वह उनके बचे हुए काम को पूरा करने में उनकी मदद कर सकें।

उसके बाद चार-चार विद्यार्थियों के ग्रुप बनाए गए और हर ग्रुप ने क्लासों की लम्बाई-चौड़ाई का माप लिया, बरामदों, खुली जगहों, गलियारों और सम्पर्क सड़कों को नापा। माप के पैमाने पर चर्चा की गई और आख़िर में यह फैसला किया गया कि एक फुट को एक सेंटीमीटर माना जाएगा।

पूरे क्षेत्र को नापने के बाद, पाठ्यपुस्तक में दी गई सामग्री के आधार पर क्षेत्र और परिधि की गणना पर चर्चा हुई। विद्यार्थियों ने नापी गई कक्षाओं के क्षेत्रफल और परिधि का हिसाब लगाया। दर्ज किए गए माप के आधार पर विद्यार्थियों ने कक्षा के कमरों का एक छोटा-सा मॉडल बनाया, जिसमें दरवाज़ों और खिड़कियों के अलावा बरामदे और बगीचे का क्षेत्र भी शामिल था।

इस सारी प्रक्रिया के दौरान विद्यार्थियों ने कक्षा के बाहर ग्रुपों में काम किया, जिसमें वे एक-दूसरे की मदद कर रहे थे, उत्साह बढ़ा रहे थे और पाठ्यपुस्तक में दिए गए सवालों के सन्दर्भ आधारित जवाब दे रहे थे। नतीजा यह था कि जब मॉडल पूरा हुआ तो सभी बहुत ख़ुश थे।

इस सारे प्रयोग के दौरान विद्यार्थियों ने यह सीखा कि रेखा-चित्र कैसे बनाने हैं, कैसे आयताकार जगहों के घेरे और क्षेत्रफल को नापना है, 2-डी और 3-डी आकार कैसे बनाने हैं, एक-दूसरे की मदद करते हुए कैसे अपने काम को बड़े समूह और बाहरी दर्शकों के सामने रखना है।

इस सारी प्रक्रिया को सुविधापूर्वक चलाने के लिए कई तरह के क़दम उठाए जाने ज़रूरी थे ताकि सारा प्रबन्ध सुचारू रूप से चलता रहे। मिसाल के लिए : विद्यार्थियों के ग्रुप बनाते हुए इस बात का पूरा ख़्याल रखना ज़रूरी था कि एक मिश्रित योग्यता वाले ग्रुप बन सकें, कक्षा की सरंचना को, जिसमें बैठने की व्यवस्था भी शामिल है, गतिशील बनाना, कक्षा के समय और टाइम-टेबल को ज़रूरत के मुताबिक ढालना, और कक्षा का समय 45 मिनट से बढ़ाकर पाँच घण्टे का करना, यह सारी चीज़ें बहुत महत्त्वपूर्ण थीं। और इसके लिए ज़रूरी सामग्री का बन्दोबस्त भी अध्यापकों और विद्यार्थियों को ही करना था।

शुरू में विद्यार्थियों के लिए यह समझना काफ़ी मुश्किल था कि सही दिशा और अनुस्थिति के रेखा-चित्र कैसे बनाए जाएँ और उन कमरों के मॉडल कैसे बनाएँ जिनमें चार से ज़्यादा दीवारें थीं और वह एक-दूसरे से समकोण पर भी नहीं मिलती थीं। अध्यापक के लिए उन विद्यार्थियों को व्यस्त रखना भी एक चुनौती थी जिन्होंने अपना काम दूसरों से पहले पूरा कर लिया था। दूसरी तरफ़ कुछ विद्यार्थी तय किए गए समय से ज़्यादा समय ले रहे थे।

इस प्रोजेक्ट की सारी अवधारणा मुख्य रूप से इस लेख के दूसरे लेखक की थी और उन्होंने ही उसे क्रियान्वित भी किया था। लेकिन इस पूरी प्रक्रिया के दौरान अन्य साथियों का भी उन्हें पूरा-पूरा सहयोग मिला। बाद में उनमें से एक ग्रुप का संचालन भी दूसरे सहयोगी ने किया था।

पानी का लेखा-जोखा

सातवीं कक्षा के प्रोजेक्ट के लिए हमनें पानी का विषय चुना, क्योंकि वह उनकी एनसीईआरटी की भूगोल और विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में शामिल था। इस प्रोजेक्ट को पूरा करने के लिए गणित के विभिन्न अध्यायों – भिन्न क्षेत्रफल, परिधि, आयतन, प्रतिशत, ग्राफ़-लेखन, ठोस वस्तुओं का क्रास-सैक्शन, को एक-दूसरे से जोड़ा गया था। प्रोजेक्ट में दोनों तरह की चीज़ें थी, कक्षा के अन्दर होने वाली और बाहर होने वाली भी।

चर्चा की शुरुआत इस बात से हुई कि पानी का हमारे जीवन में क्या उपयोग है और कहाँ-कहाँ उसका इस्तेमाल होता है। विद्यार्थियों ने अख़बारों में ख़ोज-बीन की और पानी से जुड़े मुद्दों की एक सूची बनाई। फिर उन्होंने इस बात का एक लेखा-

तालिका-1

ग्रुप नम्बर	पानी के इस्तेमाल का क्षेत्र	प्रतिदिन इस्तेमाल होने वाले पानी की मात्रा (लीटर में)
ग्रुप 1	दोपहर का भोजन	115
ग्रुप 2	पौधों की सिंचाई	1192
ग्रुप 3	पीने का पानी	70
ग्रुप 4	शौचालयों में इस्तेमाल होने वाला पानी	776
ग्रुप 5	स्कूल की साफ़-सफ़ाई में लगने वाला पानी	304
ग्रुप 6,7,8	दूसरे क्षेत्रों में उपयोग	5

जोखा तैयार किया कि स्कूल में कितना पानी इस्तेमाल होता है और इस बात का भी पूरा हिसाब लगाया कि किस काम में पानी की कितनी मात्रा की खपत होती है।

अब तीन-तीन लोगों के आठ ग्रुप बनाए गए और हरेक को यह कहा गया कि वह इन छह प्रमुख क्षेत्रों में इस्तेमाल होने वाले पानी की मात्रा का लेखा-जोखा तैयार करे। तालिका-1 में विद्यार्थियों द्वारा तैयार किए गए उसी सारे लेखे-जोखे का ब्यौरा दिया गया है।

अब आगे आने वाले हिस्सों में हम उन तकनीकों और तौर-तरीक़ों का संक्षिप्त ब्यौरा पेश करेंगे जिनका इस्तेमाल विद्यार्थियों ने पानी की खपत और उपयोग का लेखा-जोखा तैयार करने के लिए किया।

(पानी का यह सारा हिसाब-किताब एक लीटर वाले जग के पैमाने से लगाया गया।)

मिड-डे मील

विद्यार्थी रसोई में गए और दोपहर का भोजन बनाते हुए कहाँ-कहाँ कितना पानी इस्तेमाल होता है उसकी एक सूची तैयार की :

दाल धोने में (4 ली.), चावल धोने में (7 ली.), सब्ज़ियाँ धोने में (6 ली.), दाल-सब्ज़ियों को उबालने में (13 ली.), और चावल उबालने में (25 ली.), बर्तन धोने में (60 ली.), थालियाँ धोने में (550 ली.)।

प्लेटें धोने में लगने वाले पानी का हिसाब लगाने के लिए उस ग्रुप ने हर कक्षा से चार विद्यार्थी लिए और उन्हें एक ही टब से प्लेटें धोने के लिए कहा गया। फिर उन्होंने हिसाब लगाया कि उस टब में 140 लोगों द्वारा की जाने वाली पानी की कुल खपत के बराबर पानी आता था।

पौधों की सिंचाई

विद्यार्थियों ने यह पता लगाया कि पौधों को पानी देने में कितना समय लगता है और पाइप से निकलने वाले पानी की दर (प्रति-मिनट निकलने वाली मात्रा) क्या है। उन्होंने देखा कि 15 लीटर की एक बाल्टी 2 मिनट में भर जाती है। जिससे पता चला कि पौधों को पानी देने के लिए 1192 लीटर पानी का इस्तेमाल किया जा रहा था।

पीने का पानी

ग्रुप ने पानी का एक 15 लीटर का कनस्तर लिया और हर कक्षा के चार विद्यार्थियों से कहा गया कि वह सिर्फ़ उसी में से पानी पिएँ। आँकड़े इकट्ठे करने वाले सदस्यों ने लगातार तीन दिन उसी जगह पानी की खपत-दर को भी नोट किया। जिससे पता चला कि 32 विद्यार्थी 16 लीटर पानी पीते हैं। इस हिसाब से 140 लोगों के लिए तक़रीबन 70 लीटर पानी की ज़रूरत पड़ती है।

शौचालयों में इस्तेमाल होने वाला पानी

इसके लिए विद्यार्थियों ने यह पता लगाया कि टंकी में कुल कितना पानी आता है, और उसे पूरा भर दिया और यह हिसाब लगाया कि एक बार इस्तेमाल करने में कितना पानी लगता है। जिससे पता चला कि शौचालय में फ्लश और धुलाई के लिए 676 लीटर पानी का इस्तेमाल होता था। विद्यार्थियों ने शौचालयों की देख-रेख करने वाले स्टाफ़ कर्मचारियों से बातचीत की और यह पता लगाया कि 70 लीटर पानी फ़र्श धोने में और 30 लीटर पानी वॉश-बेसिनों में इस्तेमाल होता है।

स्कूल की साफ़-सफ़ाई में लगने वाला पानी

इसका पता लगाने के लिए विद्यार्थियों ने स्कूल की साफ़-सफ़ाई रखने वाले कर्मचारियों के साथ मिलकर काम किया। उन्होंने ख़ुद सफ़ाई के काम में हिस्सा लिया ताकि ठीक से इस बात को समझ सकें कि कहाँ-कहाँ कितना पानी इस्तेमाल होता है। उन्होंने पाया कि उस सारे काम में कुल 304 लीटर पानी इस्तेमाल होता था। इसमें से 30 ली. पानी प्रवेश द्वार की धुलाई के लिए, 60 ली. नालियों के लिए, 32 ली. चादरों को धोने में, 12 ली. तौलियों के लिए, एमडीएम हॉल के लिए 150 ली. और वॉश-बेसिनों के आस-पास की सफ़ाई में 20 ली. पानी लगता था।

दूसरे क्षेत्रों में उपयोग

विद्यार्थियों ने इस बारे में ख़ोजबीन की कि पानी का इस्तेमाल और किन-किन कामों में होता है। इसकी पूरी जानकारी हासिल करने ले लिए उन्होंने अध्यापकों, प्रबन्धकीय और सहायक स्टाफ़ के लोगों के साथ बातचीत की और इस बात का पता लगाया कि वैज्ञानिक प्रयोगों में 0.06 ली. पानी लगता था, कला और शिल्प की क्लासों में 0.03 ली., चाय बनाने में 3 ली. और कूड़ेदान को साफ़ करने में 1.8 ली. पानी इस्तेमाल होता था। इन सारे कामों में पानी की कुल खपत 5 लीटर थी।

विद्यार्थियों ने सारे आँकड़े इकट्ठे किए, पानी के इस्तेमाल को दिखाने के लिए उसके ग्राफ़ बनाए, विभिन्न क्षेत्रों में उसके उपयोग की आपस में तुलना की और कक्षा में उस पर चर्चा की। इस काम को पूरा करने के लिए उन्होंने ग्रुप बनाकर काम किया, चर्चाएँ की और आँकड़े इकट्ठे करने और मापने के तरीक़े डिज़ाइन किए, उन्हें तैयार किया, और इस तरह अलग-अलग कामों में इस्तेमाल होने वाले पानी की मात्रा के बारे में ठोस जानकारी हासिल की।

इस प्रोजेक्ट के दौरान विद्यार्थियों ने पानी की विशेषताओं के बारे में भी खोजबीन की और जल-चक्र का एक मॉडल भी

बनाया। पढ़ना और लिखना इस सारे प्रोजेक्ट का एक ज़रूरी हिस्सा था। विद्यार्थी पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु को समझने के साथ-साथ उसके असल जीवन के साथ जुड़ाव और जैसी गणित की अवधारणाओं को जानने की प्रासंगिकता को भी समझ पाए।

पाँचवीं कक्षा के प्रोजेक्ट के विपरीत यहाँ इस प्रोजेक्ट में हम आमतौर पर तकरीबन तीन से पाँच घण्टे तक रोज़ लगाते थे। दो अध्यापक (इस लेख के तीसरे और चौथे लेखक) तो हमेशा विद्यार्थियों के साथ ही रहते। आमतौर पर तीन अध्यापक और एक शिक्षक-प्रशिक्षक विद्यार्थियों और अध्यापकों की मदद के लिए वहाँ मौजूद रहते थे।

यह प्रोजेक्ट कई मायनों में बहुत गहन था। तीन या चार अध्यापक हमेशा 25 विद्यार्थियों के साथ बने रहते और उन सभी ने इस काम में बहुत समय लगाया गया था। प्रोजेक्ट के इंचार्ज अध्यापकों ने यह महसूस किया कि विद्यार्थियों का मार्गदर्शन एक बहुत ही चुनौती भरा काम था। शौचालयों में रोज़ाना कितना पानी इस्तेमाल होता था, ऐसे सवाल दिखने में तो बहुत आसान लगते थे, लेकिन उनका हिसाब-किताब लगाना या उन्हें मापना काफ़ी मुश्किल साबित होता था।

आगे की राह

यह पहली बार था जब स्कूल में इस तरह का कोई प्रोजेक्ट किया जा रहा था जिसमें सारा स्कूल शामिल था। हालाँकि इसमें बहुत ज़्यादा ऊर्जा और समय खर्च हुआ था, लेकिन सभी प्रभारी अध्यापकों ने स्पष्ट रूप से यह महसूस किया कि वह उनके लिए सीखने का बड़ा मौक़ा साबित हुआ था। हालाँकि, इतने बड़े प्रोजेक्ट के लिए एक सटीक योजना की और पूरे स्कूल की मदद की ज़रूरत होती है। हमारी योजना है कि हम इस टॉपिक को प्रोजेक्ट आधारित शिक्षण इकाई का स्वरूप दें जिसमें उपयुक्त आकलन के तरीक़े भी शामिल हों।

आभार :

पाँचवीं कक्षा के प्रोजेक्ट में सहयोग के लिए हम रवि प्रताप सिंह का शुक्रिया अदा करते हैं और सातवीं कक्षा के प्रोजेक्ट में बेशकीमती योगदान के लिए संजय भट्ट को धन्यवाद देते हैं। हम उन सभी विद्यार्थियों का शुक्रिया अदा करते हैं जिन्होंने इन परियोजनाओं में हिस्सा लिया।

References

Shome, S. (2013). A teacher's practice of projects: Scope for improvements. Voices of Teachers and Teacher Educators, 2(3), 33-38.

Shome, S., and Natarajan, C. (2013). Ideas of and attitudes towards projects and changing practices: Voices of four teachers. Australian Journal of Teacher Education, 38(10), 64-81.

Shome, S., Shastri, V. V., Khunyakari, R., and Natarajan, C. (2011). What do students learn from designing and making a playground model? In Kay Stables, Clare Benson and Marc de Vries (Eds.) Proceedings of PATT 25 & CRIPT 8: Perspectives on learning in design and technology education, pp. 357 - 366. London: Goldsmiths, University of London.

Thomas, J. (2000). A Review of the Research on Project-Based Learning. The Autodesk Foundation.

शुभ्रा मिश्रा उत्तरकाशी में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन के साथ काम कर रही है। इससे पहले उन्होंने मुक्तांगन और होमी भाभा सेंटर फ़ॉर साइंस, मुम्बई और एकलव्य, इन्दौर में विज्ञान का अध्यापन किया है। उनसे *shubhra.mishra@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

दिनेश बर्तवाल 2012 से अज़ीम प्रेमजी स्कूल, मातली में हिन्दी और गणित के अध्यापक हैं। उनका शौक संगीत हैं। उनसे *dinesh.bartwal@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

नरेन्द्र कोटियाल अज़ीम प्रेमजी स्कूल, मातली में विज्ञान के अलावा कभी-कभार गणित और अँग्रेज़ी भी पढ़ाते हैं। पढ़ने और संगीत में उनकी रूचि हैi उनसे *narendar.kotiyal@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

वीरेन्द्र नेगी अज़ीम प्रेमजी स्कूल में सामाजिक विज्ञान पढ़ाते हैं। वे शिक्षाशास्त्र के सिद्धान्तों को जानने-समझने में रूचि रखते हैं। वे कबड्डी के खिलाड़ी हैं। उनसे *virendra.negi@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : बलराम बोधि **पुनरीक्षण** तथा **कॉपी एडीटिंग :** स्वाति भदौरिया

अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व के पुराने अँग्रेज़ी अंक
https://azimpremjiuniversity.edu.in/learning-curve से डाउनलोड किए जा सकते हैं।

पत्रिका के हिन्दी और कन्नड़ा अंक या उनके लेख
https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/ पर उपलब्ध हैं।

अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व पत्रिका की प्रति सब्सक्राइब/प्राप्त करने के लिए आगे दी गई लिंक पर दिए गए फार्म को भरकर भेजें :
https://bit.ly/3SS3kNG

अपने सुझाव, टिप्पणियाँ,मत और अनुभव हमें इस ईमेल पते पर भेज सकते हैं :
learningcurve@apu.edu.in

Printed and Published by Manoj P on behalf of Azim Premji Foundation for Development; Printed at Suprabha Colorgrafix (P) Ltd., No. 10, 11, 11-A, J.C. Industrial Area, Yelachenahalli, Kanakapura Road, Bangalore 560062.

Published at Azim Premji University Pixel B Block, PES College of Engineering Campus, Electronics City, Bangalore 560100;
Editor: Prema Raghunath

Azim Premji University Publications

Download Free

Azim Premji University

Rich resource material for educators

i wonder...

Rediscovering school science

www.azimpremjiuniversity.edu.in/i-wonder

iwonder@apu.edu.in

Learning Curve

A theme-based publication focussing on topics of current relavence to the education sector

www.azimpremjiuniversity.edu.in/learning-curve

learningcurve@apu.edu.in

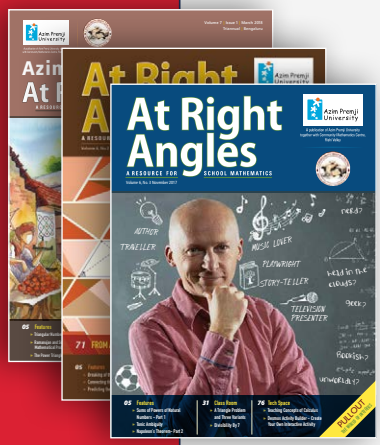

At Right Angles

A resource for school mathematics

www.azimpremjiuniversity.edu.in/at-right-angles

atrightangles@apu.edu.in

अगला अंक

विकलांग बच्चों के शिक्षण का परिप्रेक्ष्य

Azim Premji University
Pixel Park, PES Campus, Electronic City, Hosur Road
Bangalore - 560100

080-6614 5136
www.azimpremjiuniversity.edu.in

Facebook: /azimpremjiuniversity

Instagram: @azimpremjiuniv

Twitter: @azimpremjiuniv